मस्तिष्क की कार्य प्रणाली के बारे में मूलभूत तथ्यों की जानकारी उनकी सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों के प्रेक्षण द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। घटनाओं को द्वी–विरोधी धड़ों मे बाँटने की प्रवृत्ति मानव मास्तिष्क का एक सार्वभौमिक लक्षण है।

रेडक्लिफ ब्राउन संरचनात्मक प्रकार्यवाद मुख्यतः आगमनात्मक विधि पर आधारित है, जबकि संरचनावादी बहुधा जिस विधि का प्रयोग करते हैं। वह निगमनात्मकता है जो कुछ पूर्व प्रस्थापनाओं पर आधारित होती है। वे बहुधा पहले तार्किक संभावनाओं को खोजते हैं तथा बाद में उन्हें यथा स्थान फिट करने की कोशिश करते हैं।

संरचनावाद का विकास विभिन्न सम्प्रदायों के रूप में भी विकसित हुआ। ब्रिटिश संरचनावाद का विकास 1950 के दशक में सर्वप्रथम हुआ जो तत्कालीन प्रचलित संरचनात्मक–प्रकार्यवाद का ही एक पर्याय रहा है, लेकिन बाद में इस विचारधारा का प्रयोग उन ब्रिटिश मानवशास्त्रीयों के कार्यों के लिए दिया जाने लगा जिन्होंने फ्रांसीसी संरचनावाद के विचारों (सन् – 1960 के बाद से) को अपना लिया गया तथा किसी संस्कृति के एक समय विशेष के संरचनात्मक तत्वों के अध्ययन में रूचि लेना प्रारंम्भ कर दिया। संरचनावाद का यह रूप समाज अथवा संस्कृति को अपनी सम्पूर्णता से देखता है जिसका निर्माण व्यवस्थित रूप में उसकी निर्माणक इकाइयों के पारस्परिक संबंधों के आधार पर होता है। इस प्रकार संरचनावाद के प्रमुख प्रचारक लीच (1954) एक नीडहाम (1962) रहे हैं। ब्रिटिश संरचनावाद में सांस्कृतिक भिन्नता के साथ–साथ सामाजिक और सांकेतिक संरचनाओं में अन्तर–सांस्कृतिक समानताओं को स्वीकार किया गया है, वहीं स्ट्रॉसवाद ऐसी सांस्कृतिक सार्वभौमिकता पर आधारित है। जिसकी जड़ें मानव प्राणी की मानसिक एकता के सिद्धांत में निहित हैं।

डच संरचनावाद नीदरलैण्ड में सन् 1920 के दशक से पूर्व विकसित हुआ। इसमें प्रादेशिक सरंचनाओं जैसे मलाया द्वीप समूह की संस्कृति को अपनी सम्पूर्णता में अध्ययन पर बल दिया गया। डच संरचनावाद का उदय बीसवीं शताब्दी में भाषा, संस्कृति और समाज के अध्ययनों द्वारा हुआ है। इसके प्रमुख प्रणेता जोशेलीन डी जोंग (1935) रहे हैं।

फ्रांसीसी सरंचनावाद सर्वाधिक विस्तृत स्वरूप में विकसित माना जाता है, जिसके प्रणेता लेवी स्ट्रॉस रहे हैं, जिन्होंने किसी विशिष्ट संस्कृति के सदस्यों अथवा किसी विशेष संस्कृति क्षेत्रों के लोगों के मास्तिष्क की संरचनाओं की अपेक्षा मानव मास्तिष्क की संरचनाओं पर बल देता हैं।

मार्क्सवादी संरचनावाद फ्रांसीसी संरचनावाद की ही एक शाखा है जो मार्क्सवादी सिद्धांत के आधार पर 1980 और 1980 के दशकों के मध्य विकसित हुई इसके उद्‌भव एवं विकास में फ्रेंच मानवशास्त्री मार्क्स गॉडलिअर (1973), इम्मेनुएल टेके (1972) तथा क्लॉड मिलासोक्स (1981) का प्रमुख योगदान रहा है। इनका मानना था कि पूर्व–पूंजीवादी समाजों में अधि–संरचनात्मक तत्व मुख्यतः नातेदारी सम्बन्धों को निर्मित करते हैं तथा श्रम को प्रभावित करते है।

सामाजिक विज्ञान और मानविकी के कई अन्य क्षेत्र हैं जिन्होंने अपने संबंधित प्रवचन में संरचनावाद के सार का व्यापक रूप से उपयोग किया है। भूगोल भी इसका अपवाद नहीं था। जिस तरह भूगोल पहले सकारात्मकतावादी और मानवतावादी दृष्टिकोण से प्रभावित था, संभवतः उसी तरह यह सामाजिक विज्ञान के डोमेन से प्रभावित था जो या तो संरचनावादी विश्लेषण के स्रोत थे या किसी तरह भूगोल से पहले संरचनावाद के दृष्टिकोण से प्रभावित थे। हालांकि, मानव भूगोल में संरचनावाद का प्रतिबिंब 1970 के दशक से पहले भी स्पष्ट पाया जाता है जब संरचनावादी दृष्टि–कोण के मुख्य प्रभाव को सबसे अधिक स्वीकार किया जाता है। पीटर क्रोपोटकिन और एलिसी रेक्लस प्रारंभिक अराजकतावादी, अभ्यासशील भूगोलवेत्ता पाए गए। ग्रेगरी (1978) ने स्ट्रॉस के काम को मानव भूगोल के साथ सहसंबंधित करते हुए संक्षेप में रिकॉर्ड किया, हालांकि उनके काम को उस संबंध में पूर्ण नहीं माना जाता है। दरअसल, मानव भूगोल के साथ संरचनावादी दृष्टिकोण को जोड़ने में 'संरचना के रूप में संरचना' स्कूल और उसके विद्वानों का सीमित योगदान रहा है और गेगरी उस मामले में अपवाद नहीं थे। हालांकि, जीन पियागेट (1896–1980) का योगदान एक अपवाद था, जो 'निर्माण के रूप में संरचना स्कूल से संबंधित थे, लेकिन संरचनावादी दृष्टिकोण के साथ भौगोलिक अनुसंधान को उल्लेखनीय रूप से प्रभावित किया। उनका ध्यान संरचनात्मक परिवर्तन की प्रक्रिया के रूप में बुद्धि के अधिग्रहण पर था। उन्होंने तर्क दिया कि अंतरिक्ष और ज्यामिति के बारे में एक बच्चे की बुद्धि का विकास समय और चरणों के अधीन है जो एक दूसरे से गुणात्मक रूप से भिन्न होते हैं। विकास के प्रत्येक चरण में, नई सामग्री को पहले से प्रचलित अवधारणाओं के साथ एकीकृत किया जाता है। ऐसी सामग्रियों को इस तरह से समेकित और समन्वित किया

जाता है कि यह एक स्व–विनियमन संरचना विकसित करती है जिसमें सभी सामग्रियों को व्यवस्थित तरीके से फिट किया जाता है, न कि यादृच्छिक रूप में। उनके विचार की बाद में गोल्ड (1973) ने आलोचना की, जिन्होंने कहा कि बच्चे की मनोवैज्ञानिक विकास प्रक्रिया पर काम करने में अग्रणी होने के बावजूद, पियागेट अंतरिक्ष और ज्यामिति के बारे में अधिक चिंतित थे, एक बच्चे द्वारा बनाए रखी गई भौगोलिक छवि के बारे में ज्यादा बात नहीं की गई। जबकि इससे जुड़ी बातें सीख रहे हैं। बाद में, कई अन्य विद्वानों ने भी बच्चों की मनोवैज्ञानिक विकास प्रक्रिया पर काम किया, लेकिन ऐसे सभी अध्ययनों ने ऐसी जांचों को संरचनावाद के सिद्धांतों और तर्कों से जोड़ने के बजाय यह उजागर करने का प्रयास किया कि लोग क्या जानते हैं और एक विशेष प्रक्रिया द्वारा इसे कैसे हासिल किया जा रहा है। इसका कारण यह हो सकता है कि मानव चेतना की एक गहरी संरचना बनी रहे जो भौगोलिक अनुसंधान के लिए बहुत प्रासंगिक है लेकिन उन दिनों इसका अध्ययन नहीं किया गया था।

भौगोलिक शोधों में संरचनावादी दृष्टिकोण की सबसे प्रमुख प्रविष्टि 1970 के दशक के दौरान मार्क्सवादी भूगोलवेत्ताओं के कार्यों के माध्यम से स्पष्ट हो सकती है, जब उन्होंने स्थानिक विज्ञान को कड़ी चुनौती दी, जिसे कभी–कभी कार्टोग्राफी के रूप में दर्शाया जाता था। पीट (1977) के अनुसार, भूगोलवेत्ताओं में मार्क्सवादी दृष्टिकोण अपनाने की बढ़ती रुचि तत्कालीन पश्चिमी समाज की मौजूदा संरचना के प्रति असंतोष और प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण के प्रति बढ़ती निराशा के कारण थी, जो सामाजिक रूप से स्वीकार्य समाधान और परिवर्तनों को प्राप्त करने में बार–बार विफल रही। इस संदर्भ में, डेविड हार्वे को काम समाजिक न्याय और शहर' (2010) ने भूगोलवेत्ताओं के लिए भौगोलिक अनुसंधान के लिए मार्क्सवादी दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरणा के रूप में काम किया, क्योंकि यह दृष्टिकोण समग्र है और आर्थिक और सामाजिक दोनों की परस्पर निर्भरता पर अधिक जोर देता है। उत्पादन, उपभोग और वितरण के संदर्भ में मुद्दे। हालाँकि, भूगोल में मार्क्सवादी दृष्टिकोण को उधार लेने पर भी कई आधारों पर बहस हुई दर्शन को अपनाने से लेकर भूगोल में इसे लागू करने के तरीके तक। बड़ी संख्या में भूगोलवेत्ताओं ने पूंजीवादी समाजों के विविध आर्थिक पहलुओं को प्रस्तुत करने में मार्क्सवादी दृष्टिकोण अपनाया, लेकिन उत्पादन प्रणाली को आगे की खपत और वितरण प्रणाली के साथ जोड़ने के लिए मार्क्सवाद के पूर्ण रूप पर विचार नहीं किया जिसका अर्थ है कि वे आर्थिक पहलुओं को जोड़ने में विफल रहे। सामाजिक मुद्दे (स्मिथ, 1977)। कभी–कभी, इसकी एक ऐसे दृष्टिकोण के रूप में आलोचना की गई है जिसे मार्क्सवादी के बजाय मार्क्सवादी कहा जाता था (एशेम, 1979)1

संरचनावादी भूगोल का वास्तविक रूप वास्तव में उत्पादन प्रणाली और उसके संगठन के महत्व को स्वीकार करता है जो समाज के सभी स्तरों पर सामाजिक प्रक्रियाओं के निर्माण और संरचना को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है। इसलिए, स्वाभाविक रूप से, यह उन सभी द्वंद्वात्मक संबंधों से संबंधित है जो एक ओर सामाजिक प्रक्रियाओं और दूसरी ओर प्राकृतिक पर्यावरण और स्थानिक संबंधों (पीट और ल्यॉस, 1981) के बीच मौजूद हैं। बहुत महत्वपूर्ण रूप से, क्रांति की शुरुआत करने में मार्क्सवादी भूगोलवेत्ताओं को दिशा देने के लिए कोई विशेष सुव्यवस्थित रूपरेखा तैयार नहीं की गई थी, जब तक कि आलोचनात्मक सिद्धांत विद्वानों की सर्वसम्मति ने सुझाव नहीं दिया कि मार्क्सवादी विश्लेषण के प्रकाश में वास्तविक तथ्यों की सराहना केवल शक्ति और आत्मप्रतिबिंब को बढ़ा सकती है। इसलिए, मार्क्सवादी भूगोल एक सैद्धांतिक और साथ ही एक राजनीतिक आधार विकसित करता है जो आम लोगों की आम जनता की ओर से अंतर्राष्ट्रीय शासक वर्ग के लोगों द्वारा विनाश और शोषण के रूपों को चुनौती देने की बात करता है (पीट और ल्यॉस, 1981)। इसलिए, मार्क्सवादी भूगोल मूलतः वास्तविकता की संरचना से निपटने के लिए एक समग्र परिप्रेक्ष्य की मांग करता है। डनफोर्ड (1980) जैसे कुछ विद्वानों ने सुझाव दिया, हालांकि एक समग्र परिप्रेक्ष्य बनाए रखने की आवश्यकता है, सामाजिक विज्ञान की व्यक्तिगत शाखाओं के पास अलग–अलग विषयों के रूप में प्रकट होने का उचित औचित्य है क्योंकि उनके पास ध्यान देने का अपना विशिष्ट केंद्र है। इस विशेष परिप्रेक्ष्य से, मानव भूगोल में प्रवचन की अपनी विशिष्ट पंक्ति स्थापित करने की गुंजाइश है जिसे इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है संरचना और स्थानिक रूपों का अध्ययन जो ऐतिहासिक रूप से उत्पादित किया गया है और उत्पादन प्रणाली के मोड द्वारा निर्दिष्ट किया गया है। इस तरह के तर्कों ने मानव भूगोलवेत्ताओं को इस आम सहमति पर पहुँचाया कि भूगोल को अपने परिपेक्ष्य की प्रकृति के साथ आना चाहिए जो सामाजिक मुद्दों की संरचनाओं और स्थानिक रूपों को प्रकट करने में आत्म–प्रतिबिंबित और शक्तिशाली होगा। इसने कालान्तर में संरचनावादी भूगोल के विकास को मार्ग प्रशस्त किया।

ऐसा प्रतीत होता है कि संरचनावादी भूगोल में मानवतावादी भूगोलवेत्ताओं की तरह ही आलोचनाएँ शामिल थीं, जिन्हें सामाजिक प्रक्रियाओं के परिणामों की व्याख्या करने में अन्य दृष्टिकोणों की अपर्याप्तता की आलोचना करने के लिए प्रशिक्षित किया गया था। संरचनावादी भूगोलवेत्ता मुख्य रूप से यह मानते हुए दृष्टिकोण की आलोचना करते हैं कि व्यक्तिगत निर्णय लेने से वास्तविक संरचनात्मक प्रक्रिया का पता नहीं चल सकता है जो भूगोल के निर्माण और मनोरंजन को रेखांकित करती है। मानव भूगोल के कुछ क्षेत्रों में संरचनावादी भूगोल का प्रभाव अधिक प्रभावी है।

ऐसे क्षेत्रों में एक आर्थिक भूगोल है जहाँ संरचनावादी कार्यों का प्रमुख फोकस विकास के साथ–साथ अविकसितता का भूगोल भी पाया गया। ऐसी घटनाओं के संरचनावादी विश्लेषण ने मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थव्यवस्था में नियतिवादी स्थानिक प्रसार के साथ एक रेखीय आर्थिक विकास को बदल दिया। बुकफील्ड, ब्रेवर, एन. स्मिथ जैसे विभिन्न विद्वानों के लेखन ने इस संदर्भ में बहुत कुछ प्रेरित किया।

संरचनावादी दृष्टिकोण का योगदान सामाजिक भूगोल, विशेष रूप से सामाजिक शहरी भूगोल में भी प्रमुख है जिसने भौगोलिक अनुसंधान के अभिविन्यास को बदलने में बहुत प्रभाव डाला। पूर्व–संरचनावादी परिप्रेक्ष्य में, भूगोलवेत्ता शहरी क्षेत्रों में कौन कहाँ रहता है जैसे मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करते थे और यह भी मानते थे कि समय के साथ सामाजिक संबंधों का एक निश्चित समूह नहीं बदल रहा था, ऐसे संबंधों की शुद्धता के बारे में आपसी सहमति थी। जिसके आधार पर लोगों को एक विशिष्ट आवास स्थान आवंटित किया जाएगा और उन्हें अपनी स्थिति बदलने की अनुमति दी जाएगी और लोगों के बीच जहां भी वे चाहे आवास स्थान चुनने के लिए एक स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा होगी। संरचनावादी परिप्रेक्ष्य में यह तर्क देकर ऐसी धारणाओं को दृढ़ता से चुनौती दी कि समाज हमेशा बदल रहा है और संबंधों को तदनुसार बदलना चाहिए। इस तरह के संबंध असहमति के बजाय और कभी–कभी संघर्ष के कारण भी बदल जाते हैं (जॉनस्टन, 1980)। इसलिए, कई जटिल तंत्र बने हुए हैं जो शहरी क्षेत्र में आवास स्थानों का चयन करने की स्वतंत्र पसंद को सीमित करते हैं। इस संदर्भ में डेविड हार्वे का योगदान उल्लेखनीय पाया जाता है।

ब्रायन बेरी (1969) ने पूर्व–संरचनावादी काल के दौरान राजनीतिक भूगोल को 'मरणासन्न बैकवाटर' कहा था। 1950 और 1960 के दशक में मात्रात्मक क्रांति के दौरान आदर्शवादी और प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण का संयोजन राजनीतिक भूगोल में ज्यादा योगदान नहीं दे सका। चुनावी भूगोल ने प्रत्यक्षवादी परिप्रेक्ष्य (टेलर और जॉन्सटन, 2014) के साथ अधिक महत्व प्राप्त करने के बावजूद, वास्तविक पुनरुद्धार अपने अनुसंधान अभिविन्यास में संरचनावादी दृष्टिकोण के आवेदन के बाद दिखाई दिया। क्लार्क और डियर (1981) ने पूंजीवादी और उत्पादन प्रणाली के कई अन्य तरीकों के भीतर राज्य की प्रकृति से संबंधित सैद्धांतिक मुद्दों को एकीकृत करके राजनीतिक भूगोल में प्रमुख योगदान दिया। पूर्व संरचनावादी समय में ऐसे मुद्दों को राजनीतिक भूगोल के क्षेत्र के अंतर्गत अध्ययन नहीं माना जाता था।

ऐतिहासिक भूगोल में, संरचनावादी परिप्रेक्ष्य ने अतीत के पैटर्न का अध्ययन और व्याख्या करने के लिए एक वास्तविक विधि प्रदान की। इसके अलावा, यदि किसी को अतीत के किसी विशिष्ट पैटर्न में रुचि नहीं है, बल्कि अतीत की विशिष्ट घटनाओं की कई श्रृंखलाओं में परिवर्तनों के पैटर्न का पता लगाने में अधिक रुचि है, तो उसे भी प्रकट करने के लिए संरचनावादी दृष्टिकोण सबसे उपयुक्त है। ऐतिहासिक भूगोल में प्रेड (1979) का योगदान उल्लेखनीय है क्योंकि उन्होंने अपने विश्लेषण में संरचना की अवधारणा का उपयोग किया था।

अंत में, यह उल्लेखनीय है कि संरचनावाद के साथ मानव भूगोलवेत्ताओं का जुड़ाव अल्पकालिक था और एक संक्रमण के रूप में काम किया जब भूगोलवेत्ताओं ने कुछ अन्य दृष्टिकोण अपनाए और अधिक गहराई से निपटा। 'संरचनावाद की ओर कदम, भौगोलिक विचार में कभी भी पूरा नहीं हुआ, अधिक सैद्धांतिक सुसंगतता और कठोरता की खोज का प्रतिनिधित्व करता है (पीट, 1998, पृष्ठ 112)' संरचनावाद ने अंततः अनुभववाद की समस्याओं का पता लगाने के लिए कोई संतोषजनक समाधान नहीं दिया, बल्कि इसने सत्ता और सामाजिक प्रक्रियाओं का संरचनात्मक विश्लेषण प्रदान करने के लिए मार्क्सवाद (जैसे संरचनात्मक मार्क्सवाद) के कई रूप अपनाए (ग्रेगरी एट अल., 2011)।

14.7 सारांश

जब से भूगोल की परिवर्तनशील चिंतन फलक में नवीन संकल्पनाओं का विकास हुआ तब से

भूगोलवेताओं ने विभिन्न संकल्पनाओं को भूगोल में स्थान दिलाने का पुरजोर प्रयास किया है। इस संकल्पनात्मक विकास के दौर में नारीवादी भूगोल और मात्रात्मक क्रांति का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। नारीवादी भूगोल एक प्रकार से नारीवादी आन्दोलन है जो पुरुष प्रधान समाज में नारी को बराबरी का स्थान दिलाने की बात करता है। यह समाज में पहले महिलाओ के प्रति की जा रही अनदेखी को मिटाने के लिए किया गया कार्य है जिसमें मार्क्सवादी चिंतन का भी सहारा लिया है। जो इसे सामाजिक भूगोल से भी जोड़ने का कार्य करता है। जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने सामाजिक निर्वहन की वकालत करता है। इसी के साथ 1960 के दशक में सामाजिक मूल्यों पर प्रहार करने वाली विचार आया जिसे मात्रात्मक क्रांति का नाम दिया गया। यह भूगोल के विवरणात्मक स्वरुप पर ऊंगली उठाने लगा तथा तर्क दिया कि 20वीं शताब्दी तक आते–आते भौगोलिक अध्ययन को निराशा पूर्ण बना दिया गया। जिसमें भौगोलिक अध्ययन में वैज्ञानिकता की झलक कम दिखाई पड़ती है। इसके लिए भूगोल के स्वरुप को गणितीय, सांख्यिकीय स्वरूप के साथ सैद्धांतिक रूप दिए जाने पर कार्य किया जाने लगा तथा इसे समझाने के लिए मॉडल का सहारा भी लिया जाने लगा। इस दिशा में प्रथम प्रयास वान थ्यूनेन का माना जाता है जिन्होंने अपने कृषि अवस्थिति सिद्धान्त को समझाने के लिए मॉडल का सहारा लिया। इनका वास्तविक विकास 1960 के दशक में माना जाता है। जब इसके सम्पूर्ण स्वरुप को बदल गणित व सांख्यिकी के हवाले कर दिया गया तथा कम्प्यूटर प्रयोग अनिवार्य कर दिया। ऐसी स्थिति में भूगोल आम जन की पहुँच से दूर होता दिखने लगा तब सामाजिक भूगोल के अध्येता भूगोलवेताओं ने इसका विरोध कर मात्रात्मक विधियों के सीमित प्रयोग पर बल दिया।

14.8 पारिभाषिक शब्दावली

लैंगिक भूगोल– भूगोल का एक नवीन आयाम जिसमें स्त्री व पुरूष दोनों को समान अधिकार दिए जाने की वकालत की जाती है नारियों संरक्षण तथा उनके पुर्नजागरण पर बल दिया जाता है तथा भूगोल में इस तरह के चिंतन को नारीवादी चिंतन कहा जाता है।

मात्रात्मक क्रांति– भूगोल में द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त अनुभवात्मक अध्ययनों के स्थान पर मात्रात्मक अध्ययनों पर बल दिया जाने लगा। जिसे भूगोल में मात्रात्मक क्रांति कहते है।

14.9 बोध प्रश्न

14.9.1 दीर्घ उत्तरोय प्रश्नोत्तर

प्रश्न–1 भूगोल में नारीवादी चिंतन के स्वरुप को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न–2 भूगोल में मात्रात्मक क्रांति की रूपरेखा को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न–3 भूगोल में मात्रातमक विधियों के अपनाने के कारा बताइए।

प्रश्न–4 मात्रात्मक क्रांति का आलोचनात्मक परिक्षण कीजिए।

14.9.2 लघुउत्तरीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न–1 लैंगिक भूगोल किसे कहते हैं।

प्रश्न–2 मात्रात्मक क्रांति को परिभाषित कीजिए।

प्रश्न–3 मात्रात्मक क्रांति के समर्थक भूगोलवेताओं के नाम बताइए।

14.9.3 बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न–1 **The Quantitative Revolution Theoretical Geography** पुस्तक किस विज्ञान की है?

(क) बर्टन (ख) शोर्ले (ग) हैगेट (घ) वेबर

प्रश्न–2 हम्बोल्ट धारा का दूसरा नाम कौन सा है।

प्रश्न–3 क्रमबद्ध भूगोल के प्रणेता कौन थे?

प्रश्न–4 प्रादेशिक भूगोल के प्रणेता कौन थे?

प्रश्न–5 सन् 1859 का वर्ष का भौगोलिक काल में चर्चा

प्रश्न–6 आर्मचेयर भूगोलवेता

प्रश्न–7 रीटर की अध्ययन पद्धति

प्रश्न–8 भूगोल के प्रथम प्रोफेसर

प्रश्न–9 आगमनात्मक विधि

प्रश्न–10 निगमनात्मक विधि

अभ्यास प्रश्न

1. आधुनिक भूगोल के संस्थापक के रूप में हम्बोल्ट व रीटर के योगदान की व्याख्या कीजिए।
2. काण्ट के भूगोल के विकास में दार्शनिक आधार को स्पष्ट कीजिए।
3. हम्बोल्ट छायावादी युग के प्रतिनिधि भूगोलवेता है। स्पष्ट कीजिए।
4. हम्बोल्ट व रीटर द्वारा भूगोल के अध्ययन में अपनायी गई विधियों की व्याख्या कीजिए।
5. रीटर का प्रादेशिक भूगोल के विकास में दिए गए योगदान की व्याख्या कीजिए।
6. हम्बोल्ट व रीटर की समानताएँ व असमानताओं की व्याख्या कीजिए।

14.10 संदर्भ ग्रंथ (Reference Books)

- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन के मूलाधार, ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर
- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन का क्रम विकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, मालिक बुक कम्पनी जयपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, परिचयात्मक भूगोल, मालिक बुक कम्पनी, जयपुर
- Dickinson, R.E. Makers of Modern Geography, London.
- Hartshorne, R- The Nature of Geography AAAG.
- Harvey D. Explanation in Geography. Ed. Antold London.
- Mastin G.F. All possible world. Oxford London.
- Arild Holt –Jenson, Geography History & concepts Sage Pubs.

इकाई–15 : उत्तर आधुनिकतावाद आधुनिक भारत में भूगोल की प्रगति

ईकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3.उत्तर आधुनिकतावाद

15.4.आधुनिक भारत में भूगोल की प्रगति

15.4 सारांश

15.5 पारिभाषिक शब्दावली

15.6 बोध प्रश्न

15.6.1. दीर्घ उत्तरीय प्रश्नोत्तर

15.6.2. लघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर

15.6.3. बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर

15.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

15.1 प्रस्तावना

पिछले दो दशकों में समाज व्यक्ति वर्ष में आधुनिक एवं उत्तर आधुनिक भूगोल की चर्चा बढ़ चढ़कर की जा रही है परंतु जिन्हें भी दोनों का सही–सही अर्थ और उनके बीच का आधार मूल अंतर अभी भी पूरी तरह स्पष्ट नहीं है। इस तरह आधुनिक का अर्थ इतिहास को समझे बिना उत्तर आधुनिकतावाद को पूरी तरह से समझ पाना असंभव है। भूगोल में इस तरह के संकल्पनात्मक विचारों का समावेश 20वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही किया जा रहा है, जो भूगोल को वैज्ञानिकता की ओर ले जाते हैं तो कभी समाज विज्ञान के नजदीक ले आते हैं। इस तरह के विषयों का विकास से भी पहले 16वीं शताब्दी तथा 17वीं शताब्दी में यूरोप में प्रकट किया जाता है। यह विषय नवीनतम और प्रगतिशीलता के अनिवार्य विश्लेषण और उनके मूल पहचान बन गया। यह समाज विज्ञानों के विशेष संदर्भ में आधुनिकता को परिभाषित करते हैं। मार्क्स, एंगेल्स, गिडेंस जैसे विद्वानों के विचारों ने 19वीं सदी के मध्य में मार्क्स एवं एंगेल्स के सामाजिक परिवर्तन के इतिहास में आधुनिकता को पूंजीवाद की सफलता और उसके विश्व विस्तार का मूल कारण बताया है उनके दोनों के सहयोग के कारण ऐतिहासिक संस्कार पुरानी पहचान और उन पर आधारित संबंध विशिष्ट हो गए और परिवर्तन की प्रक्रिया इतनी तेज हो गई कि नई पहचाने और संबंध पुराने होकर स्थापित प्राप्त करने के पहले ही बासी पड़ने लगे।

स्थिति निरंतर चालू है अंतरराष्ट्रीय व्यापार पर आधारित आधुनिक विश्व व्यवस्था का प्रारंभ 16वीं सदी में यूरोपीय देशों में हुआ था, परंतु आज की विश्व व्यापी और सही अर्थों में वैश्विक बाजार व्यवस्था का विकास 19वीं और 20वीं सदी के राजनीतिक और आर्थिक विकास का परिणाम है। 19वीं सदी के प्रारंभ में आधुनिकता बाजार पर आधारित आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था का आधार बन गई और सामाजिक परिवर्तन व नए तथा पुराने जाने की गति दूर हो गई। 20वीं सदी के उत्तरार्ध में क्रांतिकारी तकनीक के विकास के परिणाम स्वरुप परिवर्तन की प्रक्रिया इतनी तेज हो गई की सामाजिक जीवन के सभी पक्षों की पहचान पर संकट उत्पन्न हो गया तथा इससे कई विषय भी प्रभावित हुए।

15.2 उद्देश्य

- आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता को स्पष्ट करना।
- आधुनिकतावादी विचारधारा के सामाजिक योगदान के बारे में जानकारी प्रदान करना।
- आधुनिकतावाद की आधारभूत संरचना की पहचान करना।

15.3 उत्तर आधुनिकतावाद

जैसा की प्रस्तावना में बताया गया है उत्तर आधुनिकता को समझने से पहले आधुनिकतावाद को भी समझना आवश्यक है। डिक्शनरी ऑफ वूमेन जियोग्राफी 1994 के अनुसार आधुनिकता से तात्पर्य ज्ञान और सामाजिक व्यवहार पद्धति के उसे विशेष प्रकार के संयोग से है जिसका विकास 16वीं, 17वीं शताब्दी में यूरोप में प्रकट हुआ और जो परिवर्तन क्रमिक प्रक्रिया के माध्यम से 17वीं सदी के मध्य तक पूरे विश्व में सामाजिक चिंतन और व्यवहार का प्रतिमान बन गया। 18वीं सदी के अंत में नवीनता और प्रगतिशीलता आधुनिकता के अनिवार्य विश्लेषक और उसकी मूल पहचान बन गया आधुनिक होने का तात्पर्य विस्तार आगे देखते हुए उन्नति और विकास के मार्ग पर अग्रसर होते रहना। ऐतिहासिक भौतिकतावाद से प्रेरित आधुनिक समाज वैज्ञानिक चिंतन पद्धति में प्रचलित सामाजिक परिवर्तनों के अध्ययन में सर्वभौमवादी परिदृष्टि 20वीं सदी के उत्तरार्ध में परिवर्तित सामाजिक व्यवस्था के लिए पर्याप्त और सामाजिक अनुभव की जाने लगी। चिंतन पद्धति में आया यह व्यापक परिवर्तन ही सामाजिक विज्ञानों में उत्तर आधुनिकतावाद का प्रारंभिक चरण था।

आधुनिकतावाद एवं उत्तर आधुनिकतावाद

एक अवधारणा के रूप में आधुनिकता की तरह आधुनिकतावाद एवं उत्तर आधुनिकतावाद का जन्म हुआ है एक और आधुनिकता शोध विचार के एक विशिष्ट दृष्टिकोण का संकेत देती है जिसे तार्किक वैज्ञानिक दृष्टिकोण कहते हैं वही दूसरी और आधुनिकतावाद समाज की एक विशिष्ट दशहरा स्थिति को दर्शाने वाली एक विचरण है यह एक प्रकार की जीवन शैली को भी प्रदर्शित करती है इसी तरह आधुनिकीरण एक प्रक्रिया है जिसके तहत कोई व्यक्ति आधुनिक बनता है आधुनिकता के विपरीत परिणामों के बाद उत्तर आधुनिकतावाद का विचार विकसित हुआ अर्थात आधुनिकतावाद की प्रतिक्रिया में उत्तर आधुनिकतावाद का जन्म हुआ उत्तर आधुनिकतावाद यह स्पष्ट करती है कि सत्य, सौंदर्य और नैतिकता वस्तुपरक वास्तविकताएं नहीं है तथा वैज्ञानिक तथा तार्किक विधियों से उनकी खोज संभव नहीं है।

औद्योगीकरण को यदि हम आधुनिकता के देन समझते हैं तो इसके दुष्परिणाम (पर्यावरण विनाश आदि) उत्तर आधुनिकता के विचार को प्रतिबिंबित करते हैं। 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के ऐसे सामाजिक सांस्कृतिक स्वरूपों के अध्ययन को उत्तर आधुनिकतावाद कहा गया जिनकी उत्पत्ति आधुनिकता की प्रक्रियाओं के तीव्रीकरण उग्रवादिता और रूपांतरण के फलस्वरूप हुई है।

गाइडेंस 1990 में आधुनिकतावाद की चार आधार मूल संस्थाओं की पहचान की है संनिरीक्षण, उद्योगवाद, पूंजीवाद तथा सैन्यशक्ति। गाइडेंस ने इनके आधार पर इंसानी और वैदिक स्तर की राजनीतिक के कौशल के दो प्रारूपो की संकल्पना की है। वरमैन 1982 में समाज विभागों के संदर्भ में आधुनिकताओं की परिभाषा करते हुए इस जीवन मृत्यु से संबंधित अनुभवों को स्वयं और दूसरों के बीच अंतर करने तथा जीवन की संभावनाओं और इसके खतरों के बारे में सोचने समझने की एक विशेष और युग समझ परिदृष्टि बताया है। अतः आधुनिक संदर्भ में और तर्क वितर्क का मिला–जुला रूप देश काल के संदर्भ में जीवित रहने अर्थात समकालीन बने रहने से संबंधित एक विशेष प्रकार की पड़ती है। अतः मानव अंकित के तीन आधारमूल विशिष्ट और परिवर्तनशील अभाव के क्षेत्र समय और अस्तित्व अर्थात मानव जीवन के क्षेत्रीय ऐतिहासिक और सामाजिक आयाम को समझने और उनकी व्यवस्था के लिए आधुनिकता एक उपयोगी शब्द है। आधुनिकतावाद का तात्पर्य आधुनिकरण और पूर्ण निर्माण की सतत प्रगतिशील प्रक्रिया के संदर्भ में समन्वय की सांस्कृतिक तथा वैचारिक संचेतनात्मक और संकलन आत्मक प्रतिक्रिया है।

उत्तर आधुनिकता दर्शन, कला और समाज वैज्ञानिक चिंतन की अपेक्षाकृत नई धारा है इनकी मुख्य विशेषताओं में आधुनिक युग की उपलब्धियां और आधुनिक चिंतन धारा की विस्थापित संकल्पनाओं और उनके बौद्धिक श्रेष्ठ संबंधी गांव के प्रति संदेह का भाव शक्ति है।

आधुनिकतावाद को सही अर्थों में स्पष्ट करते हुए भारतीय विद्वान प्रोफेसर दीक्षित ने लिखा है कि आधुनिकरण और पुनर्निर्माण की सतत प्रगतिशील प्रक्रिया के संदर्भ में समन्वय की सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक संचेतनात्मक और संकल्पनात्मक प्रतिक्रिया से है। आधुनिकतावाद चेतना का स्वरूप ऐतिहासिक परिवर्तनों के इस दीर्घकालीन दौर में पूंजीवाद के विकास में समय–समय पर उत्पन्न होने वाले संकटों के अनुरूप सदी के मध्य अपनी जकड़ बनाये रहा परिणाम स्वरुप भौगोलिक चिंतन में रेटजेल और ब्लॉश कि संघटनवादी संकल्पना

से लेकर हैंगरस्टैंड के समय भूगोल की संकल्पना तक अनेक विचारधारा निरंतर किसी ने किसी रूप में रही है। इस तरह भूगोल में आधुनिक से उत्तर आधुनिक की ओर विकास एक प्रक्रिया के रूप में हुआ है। उत्तर आधुनिकतावाद विचार विमर्श में अधिक खुलेपन एवं उदारवादी रूप पर बोल देता है सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में उत्तर आधुनिकतावाद समाज के उपेक्षित वर्गों को अनेक राजनीतिक अधिकार दिलाने पर बल देता है। भौगोलिक अध्ययनों में उत्तर आधुनिकतावाद का विचार सन 1970 के दशक में मानव भूगोल में अर्थनीतिक परिदृष्टि के प्रचार प्रसार के साथ आया था। यह विचार उसे समय मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित था, इसके बाद तत्कालीन भूगोल क्षेत्रीय इकाइयों में विद्यमान सामाजिक समदृष्टियो और स्थानीय निवासियों के जीवन की कठिनाइयों और सामाजिक वितरण में न्याय, अन्याय के क्षेत्रीय पक्ष पर केंद्रित हो गया। कैंब्रिज विश्वविद्यालय के ग्रेगरी (Derek Gregory) ने मानव भूगोल में सामाजिक समीक्षा सिद्धांत (social critical theory) का प्रतिपादन सन 1978 में ऐतिहासिक और प्रादेशिक भूगोल के अध्ययन को शब्दार्थ मीमांसा की अध्ययन पद्धति से जोड़ने के उद्देश्य से किया था (ideology science and women geography 1978) इसके बाद भूगोल एवं समाजशास्त्र में द्वैत खत्म हुआ। ग्रेगरी के अनुसार उत्तर आधुनिकतावाद मानव भूगोल की तीन प्रमुख विशेषताएं हैं प्रथम यह की सामाजिक व्याख्या स्थान और काल सापेक्ष है। उत्तर आधुनिकतावाद मानव भूगोल अध्ययन के लिए चुनी गई स्थानिक इकाई और उससे संबंधित समस्याओं को वहां रहने वाले लोगों की दृष्टि से देखने पर बोल देता है। प्रत्यावर्तन या कर्तव्य विशेषता (**reflex iveness**) अर्थात विषय एवं विषय वस्तु के मध्य पूर्ण तादात्म्युउत्तर आधुनिकतावाद समाज वैज्ञानिक चिंतन के आधारभूत मान्यता है। उत्तर आधुनिकतावाद को डियर 1986 में निम्नलिखित तीन रूपों में वर्गीकृत किया है –

1. उत्तर आधुनिकतावाद एक शैली स्टाइल है जिसमें साहित्य व साहित्यिक आलोचना से इसका जन्म हुआ है तथा अभिकल्प डिजाइन फिल्म, फोटोग्राफ, कला और वास्तुकला में इसका विस्तार हुआ है।
2. यह एक विधि है तथा विधि के रूप में सार्वभौम सत्य तथा अधिसिद्धांतों के विचारों का मनन करता है।
3. उत्तर आधुनिकतावाद को एक युग (Epoch) के रूप में माना गया है जिसे एक ऐतिहासिक काल भी कहते हैं इस काल में संस्कृति और दर्शन में परिवर्तन एक सार्वभौम अर्थव्यवस्था और भू राजनीति के विकास में स्वयं अवस्थित है। इस तरह यह विचारवाद के पूंजीवाद की संस्कृति है। उत्तर आधुनिकतावाद एक युग के रूप में समाज में, भूतकाल में, एक प्रमुख मूलभूत विचलन के रूप में वर्तमान विकास को चित्रित करता है। अतः पूर्वकी युग की आधुनिकता के विपरीत आधुनिकता शब्दावली का प्रयोग किया गया है। उत्तर आधुनिकतावाद उन सभी पद्धतियों की आलोचना करता है। जिनका भूगोल पर 1950 के दशक से 1980 के दशक तक प्रभुत्व रहा था।

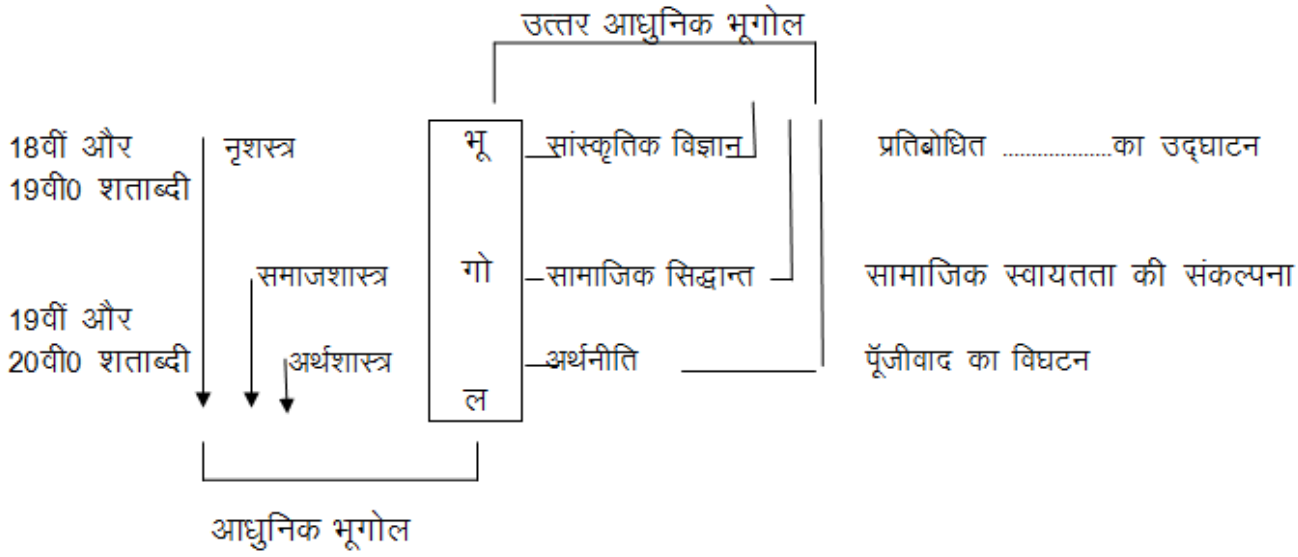

चित्र – आधुनिक मानव भूगोल का बनना और बिगड़ता (स्रोत ग्रेगरी 1989 प्र 350)

उत्तर आधुनिकतावादी चिंतन आधुनिकतावादी चिंतन की अपेक्षा विचार विमर्श में अधिक खुलेपन और

उदारवादी रुख पर बल देता है। सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में उत्तर आधुनिकतावादी चिंतन समाज के अपेक्षित वर्गों को उनके राजनीतिक अधिकार दिलाने पर बल देता है, और कला व साहित्य में परस्पर प्रतिस्पर्धा संकल्पनाओं के प्रति आधुनिकतावादी चिंतन की अपेक्षाकृत अधिक उदार व सहानुभूति पूर्ण स्वरूप अपनाता है। उत्तर आधुनिकतावादी चिंतन की व्याख्या करते हुए डियर ने इसके तीन संबंधों की ओर ध्यान खींचा है जो शैली विधि और युगारंभ है। अध्ययन की जाने वाली विषय की अर्थव्यवस्था और उसकी पहचान बहुत हद तक उनके देखने समझने और प्रस्तुत करने की शैली पर निर्भर है। शैली दो अलग–अलग रूप अपना शक्ति है या तो वह समकालीन शासक वर्ग के विचारों का समर्थन कर सकती है या उसके प्रति विरोधात्मक रूप अपना सकती है। शैली संबंधी यह विचार दृश्य निर्माण से संबंधित परिवर्तनों के बारे में भी लागू होता है उत्तर आधुनिकतावादी अध्ययन पद्धति मूलत व्याख्यान विचारों और सिद्धांतों के पुर्ननिरीक्षण की विधि है। पुर्ननिरीक्षण आलोचनात्मक विवेचन की यह विशेष पद्धति है। जिनको सहायता है किसी सिद्धांत विचार या संकल्पना और वकालव्य को विचार रखने वाले शोधकर्ता या व्यक्ति की संस्कृति पृष्ठभूमि और उसके सामाजिक आदि के पृष्ठभूमि और उनके सामाजिक आर्थिक स्तर और उसकी व्यक्तिगत विशेषताओं के परिप्रेक्षण में समझने का प्रयास किया जाता है। अतः पुर्ननिरीक्षण मूलतः सामाजिक चेतना और मान्यताओं को पूरे देने और उन्हें अधिकार करने वाली विधि है। इसके सहारे समाज वैज्ञानिक चिंतक पुरानी संस्कारों और मान्यताओं को समाज के भिन्न–भिन्न वर्गों के वर्ग गत हितों के संदर्भ में समझाने का प्रयास करता है। उत्तर आधुनिकतावाद के बाद समाज की वैचारिक प्रगति का युगांतर दिशा भी अनिवार्यता जुड़ा हुआ है अर्थात उत्तर आधुनिकतावाद को एक ऐतिहासिक युग के रूप में देखा जा सकता है। एक ऐसे युग के रूप में जिसमें सांस्कृतिक और वैचारिक मान्यताओं को राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था के विकास भी वैश्विक प्रक्रिया से जोड़कर देखने का प्रयास करता है। इसलिए कुछ समालोचकों ने उत्तर आधुनिकतावाद को पूंजीवाद के लिए विकास के अंतिम चरण की सांस्कृतिक चेतना बताया है। हार्वे के अनुसार उत्तर आधुनिकतावाद अमेरिकी उद्योगपति हेनरीजोर्ड द्वारा प्रारंभ की गई मानवीकरण अवधूत उत्पादन और भिन्न–भिन्न इकाइयों में निर्मित अलग–अलग कल पुर्जों को जोड़कर मशीनों के उत्पादन की असेंबली लाइन पद्धति के आधार पर पूंजी संचयन पद्धति के आधार पर पूंजी संज्ञान पद्धति की समाप्ति के बाद प्रचलन में आई पूंजी पद्धति की नई पद्धति द्वारा प्रेषित चेतन है। इसे सामाजिक परिवर्तन की मार्क्सवादी संकल्पना को भी दूसरों से जोड़कर देखा गया है। 1960 के दशक के उत्तर में समाज वैज्ञानिक चिंतकों का ध्यान ऐतिहासिक भौमिकवादी व्याख्या की इस आधारभूत कमी की ओर आकृष्ट हुआ और वह समाज वैज्ञानिक व्याख्या में स्थान सापेक्षता पर बल देने लगे। यही उत्तर आधुनिकतावादी चेतन की सही शुरुआत थी इसमें भौगोलिक कल्पना सामाजिक चेतना का अभिन्न अंग मानी जाने लगी।

भौगोलिक अध्ययन में आधुनिकतावादी चिंतन का क्रमिक और उत्तर आधुनिकतावादी भूगोल के और विचार परिवर्तन की प्राप्तियां 1970 के दशक में मानव भूगोल में अर्थनीति परिदृष्टि के प्रचार प्रसार के साथ निकट से जुड़ी थी। इस बात के होते हुए भी की अर्थनीति परिदृष्टि मुख्यतः तथा स्थान निरपेक्ष मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित थी। इसके साथ ही मानव भूगोल के परिदृष्टि क्षेत्रीय प्रारूपो से हटकर मानव विकास की विश्व स्तरीय अंतर क्षेत्रीय असमानताओं पर केंद्रित हो गई। हम इस प्रकार भूगोल क्षेत्रीय इकाइयों में विद्यमान सामाजिक दृष्टियों और स्थानीय निवासियों के जीवन के कठिनाइयों और सामाजिक वितरण में न्याय अन्याय के क्षेत्रीय पक्ष के अध्ययन पर केंद्रित हो गए मार्क्सवादी चिंतन के निरपेक्षता के परिणाम स्वरूप इस विचार परिवर्तन और इसके संदर्भ में अर्थनीति परिदृष्टि और उत्तर आधुनिकतावादी परिदृष्टि के बीच अनिश्चय और भ्रम की स्थिति बनी रही। मानव भूगोल की अनिश्चयवादी परिदृष्टि के समय पूंजीवादी विश्व व्यवस्था में असंगठित पूंजीवाद का युग था, परिणाम स्वरुप मार्क्सवादी विचारको में सामाजिक परिवर्तन के ऐतिहासिकवाद भौतिकवाद से प्रेरित विचारधारा की क्षेत्रनिरपेक्षता संबंधित आधारभूत कमी की ओर ध्यान आकर्षित हुआ। इस प्रकार मानव भूगोल में सामाजिक पक्ष की ओर अधिक ध्यान आकृष्ट करवाया गया। उत्तर आधुनिकतावादी भूगोल ने इस आधारभूत संकल्पना मत कठिनाई को दूर करने के लिए भूगोल के सीमांत को सभी प्रकार के वैज्ञानिक और दार्शनिक चिंतन के लिए समान रूप से खोल दिए फलस्वरुप मानव भूगोल और सिद्धांत पर समाज वैज्ञानिक चिंतन के बीच वैचारिक लेनदेन में वृद्धि है। परंतु उत्तर आधुनिकतावादी मानव भूगोल के चिंतकों को स्पष्ट मत है, मानव भौगोलिक विमर्श से विश्व स्तरीय व्यापकता वाले सिद्धांतों के प्रतिपादक की कोई संभावना नहीं है। ग्रेगरी के अनुसार उत्तर आधुनिकतावादी मानव भूगोल के तीन प्रमुख विशेषताएं हैं।

1. यह सामाजिक व्याख्या स्थान और कल सापेक्ष है।

2. उत्तर आधुनिकतावादी मानव भूगोल अध्ययन के लिए चुनी गई स्थानीय इकाई है।

3. उसे समृद्ध समस्याओं को वहां रहने वाले लोगों की दृष्टि से देखने पर बोल देता है प्रत्यावर्तन या कर्तव्य विशेषता अर्थात विषय और विषय वस्तु के बीच पूरा उत्तर आधुनिकतावादी समाज वैज्ञानिक चिंतन के आधार बहुत मान्यता है।

16.4. आधुनिक भारत में भूगोल की प्रगति

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक भारत में भूगोल का क्षेत्र केवल स्कूलों तक ही सीमित था यहा से इतिहास व नागरिकशास्त्र के साथ मिलकर पढ़ाया जाता था। इस काल में केवल देहरादून स्थित सर्वे ऑफ इण्डिया (1767 में स्थापित) ही एकमात्र संस्था थी जहाँ भौगोलिक जानकारी के लिए भूपत्रक तथा मानचित्रावली बनायी जाती थी। प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त भूगोल का अध्ययन सामाजिक अध्ययन के रूप में हाईस्कूल स्तर पर कराया जाने लगा। महा–विद्यालय स्तर पर भूगोल का अध्ययन सन् 1920 में लाहोर में आरम्भ हुआ। यह स्वतन्त्र विषय बना। स्नातकोत्तर स्तर पर भूगोल शिक्षा का श्रीगणेश सन् 1931 में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में आरम्भ हुआ। यहाँ प्रथम विभागाध्यक्ष प्रो. इनादुर्रहमान खाँ थे। 1936 में यहाँ स्नातकोत्तर अध्ययन के साथ शिक्षक प्रशिक्षण कार्यों में भी भूगोल विषय आरम्भ हुआ। 1932 में मद्रास (चौन्नई) में प्रो. एन. सुब्रह्मण्यम के निर्देशन में पहले शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय में तथा बाद में स्नातक स्तर पर भूगोल का अध्ययन आरम्भ हुआ। इस प्रकार सन् 1950 से पूर्व तक भारत में आगरा, कलकत्ता (कोलकाता), बम्बई (मुम्बई), मद्रास (चौन्नई), बड़ौदा, मैसूर, हैदराबाद, राँची, वाराणसी, इलाहाबाद, नागपुर, उदयपुर, जोधपुर, गोहाटी आदि स्थानों पर महाविद्यालयों में स्नातक स्तर पर भूगोल का अध्ययन आरम्भ हुआ।सन् 1950 से पूर्व का काल इस दिशा में प्रारम्भिक काल कहलाता है। इसके उपरान्त 1950–60 का दशक रचनाकाल के नाम से जाना जाता है। इसी दौरान सर्वप्रथम आस्ट्रेलियाई भूगोलवेत्ता ओ.एच.के. स्पेट ने 1950 में भारत एवं पाकिस्तान के भौगोलिक कार्यों का सर्वेक्षण का एक पुस्तक लिखी। इसके बाद 1964 से 1973 तक प्रो. एच.डी. घटकों ने भारत में भूगोल की प्रगति से सम्बन्धित लेख लिखे थे। 1956 में भारतीय भूगोल में निम्नांकित प्रमुख कार्य सम्पन्न हुये–

(1) भारतीय राष्ट्रीय एटलस संस्थान की स्थापना।

(2) अलीगढ़ में अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल संगोष्ठी सम्पन्न ।

(3) भारतीय भूगोलवेत्ता परिषद् का राष्ट्रीय स्तर पर संगठन।

(4) भारतीय सांख्यिकीय प्रादेशिक सर्वेक्षण के भूगोल विभाग की स्थापना।

1960–70 के दशक में भारतीय भूगोल पर प्रसिद्ध ब्रिटिश भूगोलवेत्ता डडले स्टेम्प का प्रभाव रहा जिनके निर्देशन में प्रो. मो. शफी द्वारा भूमि उपयोग कार्य किया गया था। इसी दौरान सागर विश्वविद्यालय में प्रो. मुजफ्फर अली ने सामान्य एवं व्यावहारिक भूगोल विभाग की स्थापना की। इस दौरान प्रो. अली का पौराणिक भूगोल, डी.पी. सक्सेना का वैदिक भारत का भूगोल ऐतिहासिक भूगोल के विकास में महत्त्वपूर्ण कार्य थे। सन् 1970–80 के दशक में भारतीय भूगोल में विविधता आने लगी थी। भारतीय भूगोल में अभी भी पाश्चात्य देशों का अन्धानुकरण किया गया। इस दशक में मानव भूगोल पर अधिक बल दिया गया। नगरीय भूगोल, ग्रामीण अधिवास भूगोल, जनसंख्या भूगोल, राजनैतिक भूगोल, कृषि भूगोल, औद्योगिक भूगोल आदि का स्वतन्त्र अध्ययन आरम्भ हुआ। जबकि भौतिक भूगोल में भू–आकृति–विज्ञान, जलवायु विज्ञान, समुद्र विज्ञान का भी स्वतन्त्र शाखा के रूप में अध्ययन आरम्भ हुआ। भारत में भूगोल को आधुनिक स्वरूप प्रदान करने में विभिन्न संस्थाओं, समितियों तथा सम्मेलनों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। जिनके उपरान्त भारतीय विश्वविद्यालयों में भूगोल के शिक्षण कार्य में गुणवत्ता आयी व शोध कार्य तीव्र गति से अधिक शुद्धता से होने लगे। कुशल प्राध्यापकों के निर्देशन में भौगोलिक पत्र–पत्रिकाओं का नियतकालिक प्रकाशन आरम्भ हुआ। ये संस्थायें तथा समितियाँ निम्नांकित हैं– जैसे

(1) भारतीय विश्वविद्यालय।

(2) भौगोलिक परिषदें।

(3) भारत की प्रमुख भौगोलिक पत्रिकायें।

4) भारत के भौगोलिक वैज्ञानिक संस्थान।

भारतीय विश्वविद्यालय।

भारतीय विश्वविद्यालय में भूगोल का अध्ययन सर्वप्रथम 1931 में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में आरम्भ हुआ था। कोलकाता में 1941 में, बनारस में 1946 में, इलाहाबाद में 1946 में, लुधियाना में 1948 में, मद्रास में 1948 में, पटना में 1949 में मुख्यतः स्नातकोत्तर स्तर पर भूगोल का अध्ययन आरम्भ हुआ था। इस प्रकार 1959 तक भारत में 20 विश्वविद्यालयों में तथा 1973 में 42 विश्वविद्यालयों में भूगोल का स्नातकोत्तर स्तरीय संस्थाओं में पर्याप्त विकास हुआ। भारतीय विश्वविद्यालयों में भूगोल की प्रगति निम्नांकित प्रकार से हुई

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ भारत में भूगोल का अध्ययन स्नातकोत्तर स्तर पर सर्वप्रथम 1931 में अलीगढ़ विश्वविद्यालय में हुआ, जहाँ प्रो. डॉ. इवादुर्रहमान प्रथम विभागाध्यक्ष बने। इसके उपरान्त प्रो. ताहिर रिजवी,प्रो मुजफ्फर अली ने विभागाध्यक्ष पद पर कार्य किया। इनके बाद प्रो. डॉ. मोहम्मद शफी ने यह पद सम्भाला। आपने प्रो. डडले स्टेम्प के निर्देशन में लन्दन स्कूल ऑफ इकनॉमिक्स से डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। आपका शोध प्रबन्ध विषय भूमि उपयोग से सम्बन्धिता को 1956 में यहाँ अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक संगोष्ठी आयोजित की गयी। यह देश की प्रथम भौगोलिक संगोष्ठी थी। जिसमें संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत संघ, ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, चीन आदि देशों के भूगोलवेत्ताओं ने भाग लिया था। इसमें व्यावहारिक भूगोल से सम्बन्धित 66 शोधपत्र सम्मिलित किये गये। इन शोध–पत्रों के उपविषय निम्नांकित थे

(1) राष्ट्रीय पुनर्निर्माण में भूगोल का स्थान,

(2) खाद्य संसाधन एवं जनसंख्या वृद्धि,

(3) भूगोल का अध्यापन,

(4) शुष्क एवं अर्द्धशुष्क कटिबन्ध,

(5) भूगोल एवं प्रजातिवाद,

(6) जल विद्युत विकास,

(7) भूमि उपयोग सर्वेक्षण,

(8) भूतकाल में जलवायुवीय परिवर्तन मिल

प्रो. मोहम्मद शफी ने भूगोल विभाग का विकास करने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। 20वीं अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक कांग्रेस (1964) में ये अनुप्रयुक्त (व्यावहारिक) शाखा के अध्यक्ष थे। 1966 में अनुप्रयुक्त भूगोल (Applied Geography) पर किंग्सटन, अमेरिका में अन्तर्राष्ट्रीय आयोग की अध्यक्षता इन्होंने ही की 1967 में बेल्जियम के लीग शहर में व्यावहारिक भूगोल के अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन की तीसरी सभा की भी इन्होंने अध्यक्षता की थी, जहाँ इनको लांग विश्वविद्यालय ने स्वर्ण पदक से सम्मानित किया। प्रो. शफी ने उत्तर प्रदेश की कृषि दक्षता का मूल्यांकन व भारत में खाद्य उत्पादन दक्षता आदि विषयों पर शोध उनकी उत्कृष्ट देन है। भारतीय भौगोलिक परिषदों में उच्च पदों पर कार्य कर चुके प्रो. शफी को 1987 में ग्रेट ब्रिटेन की रायल ज्यॉग्राफिकल सोसाइटी का सदस्य चुना गया। आपने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से 1941 से प्रकाशित वार्षिक परीक्षा The Geographer को आधुनिक गुणवत्ता के साथ नियमित प्रकाशित करने में भी योगदान दिया। प्रो. शफी ने लेखक के 1999 में शोध प्रबन्ध का भी मूल्यांकन किया था।

कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता

कलकत्ता विश्वविद्यालय में डॉ. एस.पी. चटर्जी के निर्देशन में सन् 1939 में स्नातकोत्तर स्तर पर भूगोल का शिक्षण कार्य आरम्भ हुआ। प्रो. चटर्जी ने लन्दन से पीएच. डी. तथा पेरिस 1- Shafi- M--"Land Utilization in Eastern Uttar Pradesh India से डी.लिट. की उपाधियाँ अर्जित कीं। इन्होंने रंगून (यंगून) में भी कुछ समय तक भौतिक भूगोल का शिक्षण कार्य करवाता है इसके अतिरिक्त इन्होंने बंगाल के चौबीस परगना में भूमि उपयोग सर्वेक्षण कार्य तथा 1948 में बंगाल मानचित्रावली प्रकाशित कर भूगोल को अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। प्रो. चटर्जी भारतीय भूगोलवेत्ताओं की परिषद्, अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक संघ आदि संघटनों में भी

प्रमुख पदों पर कार्य कर चुके हैं। डॉ. चटर्जी की अध्यक्षता में नई दिल्ली में 1968 में अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक कांग्रेस का 21वाँ अधिवेशन हुआ था, जिसमें प्रमुख वैज्ञानिकों एवं भूगोलवेत्ताओं ने भाग लिया। इसमें संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, जर्मनी ब्रिटेन आदि 120 देशों के भूवैज्ञानिक एवं भूगोलवेत्ता उपस्थित हुए थे। डॉ. चटर्जी के महत्वपूर्ण प्रयासों से ही कलकत्ता विश्वविद्यालय में मृदा विज्ञान, भू–आकृति विज्ञान, भूमि उपयोग, जलवायु विज्ञान, नगरीय भूगोल, स्वास्थ्य भूगोल तथा मानचित्र विज्ञान आदि शाखाओं का विकास एवं उनमें शोध कार्य आरम्भ हुआ।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

यहाँ पर सर्वप्रथम 1947 में डॉ. एच.एल. छिब्बर ने स्नातकोत्तर भूगोल विभाग की स्थापना की। ये मूलतः भूगर्भशास्त्री रहे हैं। इन्होंने यहाँ 1955 तक कार्य किया। सन् 1955 में प्रो. छिब्बर के निधन के उपरान्त डॉ. आर. एल. सिंह विभागध्यक्ष बने। इनका शोध विषय मार्क्सवादीनगरीय भूगोलमार्क्सवादी रहा है। सन् 1968 में यहाँ अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल की सभा एवं नगरीय भूगोल से सम्बन्धित संगोष्ठी का आयोजन किया गया। (यहीं 1946 में 'नेशनल ज्यॉग्राफिकल सोसाइटी ऑफ इण्डिया' की स्थापना की गयी। डॉ. रामलोचन सिंह (आर.एल. सिंह) ने अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल संघ में 'ग्रामीण बस्तियों के कमीशन' की संगोष्ठी में अध्यक्षता की जिसमें इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ भारत–एक प्रादेशिक भूगोल (India A Regional Geography) का विमोचन हुआ यह पुस्तक वर्तमान में भी भारत के प्रादेशिक अध्ययन की दृष्टि से एक उत्कृष्ट कृति है प्रो सिंह ने भी लन्दन विश्वविद्यालय से बनारस का नगरीय भूगोल नामक शोध प्रबन्ध पर डॉक्टरेट की उपाधि अर्जित की थी। इनके नगरीय भूगोल पर दो अन्य शोध पत्र उत्कृष्ट कोटि के हैं। डॉ. सिंह ने स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थियों के लिए 'प्रयोगात्मक भूगोल भी लिखी है।

प्रो. रामलोचन सिंह ने अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में भाग लिया तथा अध्यक्षता की। ये 18वीं अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक कांग्रेस, रियो डी जेनेरो (ब्राजील) के उपाध्यक्ष थे। अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक संघ की कुआलालाम्पुर एवं टोकियो में सम्पन्न प्रादेशिक संगोष्ठियों में भाग लिया था। 1965 में विजिटिंग प्रोफेसर बनकर मैक्सिको गये थे जहाँ एशिया के भूगोल पर भाषण दिया था। 1971 में बनारस में इन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल संघ के ग्रामीण बस्तियों के कमीशन की संगोष्ठी का संचालन किया, जिसमें पढ़े गये शोध पत्र 'Rural Settlemcat in Monsoon Asia' का ग्रन्थ के रूप में प्रकाशन हुआ। इस प्रकार इन्होंने बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय में नगरीय भूगोल, ग्रामीण भूगोल, भू–आकृति विज्ञान, भूरूपांकन, भूमि उपयोग तेक्षा प्रादेशिक योजना से सम्बन्धित विषयों का विकास किया एवं शोध कार्य करवाय

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली (Jawaharlal Nehru University New Delhi)

इसकी स्थापना सन् 1969 में की गयी थी। यहाँ भूगोल का अध्ययन स्नातकोत्तर स्तर पर सामाजिक विज्ञान विद्यालय (**School of Social Sciences**) के प्रादेशिक विककोत्तर स्तर (Centre for the Study of Regional Development) में कराया जाता है। इनके अतिरिक्त एम.फिल. एवं उच्चतर शोध डॉक्टरेट आदि करवायी जाती है। यहाँ पर भूगोल से सम्बन्धित इस केन्द्र की स्थापना का श्रेय प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता प्रो. युनिस रजा को है, जो इसके प्रथम अध्यक्ष रहे हैं। इनके अतिरिक्त इलाहाबाद, लुधियाना, मद्रास, पटना, कर्नाटक (धारवाड़), पूना, राँची, उस्मानिया (हैदराबाद), भागलपुर, बड़ौदा, सागर, गोहाटी, गोरखपुर, मैसूर, दिल्ली आदि विश्वविद्यालयों में 1960 से पूर्व भूगोल का शिक्षण आरम्भ हो गया था। 1961 से 1970 के दौरान दार्जिलिंग, मगध, जोधपुर, चण्डीगढ़, उदयपुर, रायपुर, ग्वालियर, जयपुर, कुरुक्षेत्र, दिल्ली (जे.एन.यू.), विश्वविद्यालयों में तथा 1971 के बाद में गढ़वाल, कुमायूँ, जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश (शिमला), शिलांग, पटियाला आदि विश्वविद्यालयों में भी भूगोल का शिक्षण स्नातकोत्तर स्तर पर आरम्भ हुआ।

भौगोलिक परिषदें (Geographical Councils)

भूगोल के विकास एवं व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने में भौगोलिक परिषदों की प्रमुख भूमिका रही है। सर्वप्रथम इनकी स्थापना 19वीं शताब्दी में यूरोपीय देशों द्वारा की गई। फ्रांस में संसार की प्रथम भूगोल परिषद्–पेरिस की भूगोल परिषद् (Societe de&Geographie de& Paris) की स्थापना सन् 1821 में हुई इसके उपरान्त सन् 1828 में बर्लिन में अर्डकुण्डे जु बर्लिन (Gesellschaft fur Erdkunde Zu Berlin), लन्दन में 1830 में रायल ज्याग्राफिकल परिषद् (Royal Geographical Society), 1845 में रूस के सेंट पोटसबर्ग में इम्पीरियल रूसी

भूगोल परिषद् (Imperial Russian Geographical Society)] 1852 में अमेरिकी भूगोल परिषद् (American Geographical Society) तथा 1884 में एडिनबरा में रायल स्काटिश ज्यॉग्राफिकल सोसायटी (Royal Scottish Geographical Society), 1832 में बम्बई भूगोल परिषद्, बम्बई आदि भूगोल परिषदों की स्थापना हुई। भारत में भूगोल परिषदों की स्थापना 20वीं सदी के दूसरे दशक से आरम्भ हुई। वर्तमान में भारत में निम्नांकित भौगोलिक परिषदें कार्यरत हैं–

भारतीय भौगोलिक परिषद्, मद्रास (चेन्नई) (Indian Geographical Society)

इसकी स्थापना सन् 1926 में एन. सुब्रामण्यिम ने अपने मित्र भूगोलवेत्ता एम. सुन्नामण्यिम को सहायता से 'Madras Geographical Association' के नाम से की थी। इसके बाद कुमारी जे.एम. गेरार्ड एवं ई.डब्ल्यू. ग्रीन ने मिलकर इसे विकसित किया। स्थापना के समय इसके केवल 142 सदस्य थे यहाँ से प्रकाशित होने वाली वार्षिक पत्रिका 'Journal of Madras Geographical Association' थी जिसका बाद में नाम परिवर्तित कर ′Indian Geographical Journal' कर दिया गया।

भारतीय राष्ट्रीय भूगोल परिषद्, वाराणसी (National Geographical Society of India&N-G-S-I)

इसकी स्थापना काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भूगोल के विभागाध्यक्ष प्रो. एच.एल. छिब्बर ने 1946 में की, जिसका नियमित प्रकाशन इनके निर्देशन में 1954 तक चला तथा इनके निधन के उपरान्त 1955 से प्रो. आर. एल. सिंह के निर्देशन में 'National Geographical Journal" के नाम से एक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित होती रही। यह भारत की एक प्रतिष्ठित पत्रिका है, जिसे प्रो. सिंह के प्रयासों से अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिली। इस परिषद् के तत्वावधान में यहाँ 1966 में 'All India Seminar on Applied Geography' का आयोजन किया गया।

भारतीय भूगोलवेत्ताओं का राष्ट्रीय संघ (National Association of Indian Geographers&NAGI)

इसकी स्थापना एवं विकास जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (J-N-U) नई दिल्ली के प्रोफेसर मुनिस रजा एवं प्रोफेसर गोशाल ने की थी। इसका मुख्य संरक्षक प्रतिवर्ष चयनित अध्यक्ष एवं भूगोल विभाग का प्रोफेसर रहता है। भारत का कोई भी भूगोलवेत्ता इसका सदस्य बन सकता है।

बम्बई भूगोल परिषद्, मुम्बई (Bombay Geographical Association, Mumbai)

इसकी स्थापना 1832 में रॉयल जयॉग्राफिकल सोसाइटी, लन्दन की भारत में शाखा के रूप में की गयी थी। 1837 से इसने स्वतन्त्र रूप से अपना कार्य करना आरम्भ कर दिया था। इस प्रकार यह भारत की सबसे प्राचीन व प्रथम भूगोल परिषद् है। इसके अनियमित कार्यकाल तथा बार–बार नाम परिवर्तन होने के कारण इसका प्रभाव स्थानीय स्तर तक ही सीमित रहा। यह 1832 से 1873 तक रॉयल ज्यॉग्राफिकल सोसायटी के शाखा कार्यालय के कारण इसका निरन्तर वार्षिक प्रकाशन होता रहा। 1873 से इसे एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता से सम्बद्ध किया गया। सन् 1935 में वी. डी. घाटे (V.D. Ghate) तथा सी.बी. जोशी के सम्मिलित प्रयासों से 'Bombay Geographical Society' की स्थापना की गयी जहाँ से 1952 में 'Bombay Geographical Magazine' का वार्षिक प्रकाशन आरम्भ हुआ। सन् 1963 से यह विश्वविद्यालय भूगोल परिषद् के निकट सम्पर्क में है।

भारतीय भौगोलिक परिषद्, कोलकाता (Indian Geographical Council] Kolkata)

इसकी स्थापना 1933 में 'Calcutta Geographical Society' के नाम से हुई थी। इसने 1936 से कलकत्ता ज्यॉग्राफिकल रिव्यू नामक भौगोलिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। 2 जनवरी, 1951 में इसका नाम परिवर्तित करके भारतीय भौगोलिक परिषद् कर दिया गया तथा पत्रिका का नाम बदलकर 'Geographical Review of India' कर दिया गया।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय भूगोल सोसायटी, अलीगढ़ (ALLU Geographical Society, Aligarh)

इसकी स्थापना सन् 1946 में हुई। यहाँ 1956 में सर्वप्रथम अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल संगोष्ठी आयोजित की गयी, जिसमें विश्व के 130 देशों के भूगोलवेत्ता आये तथा 66 शोधपत्र पड़े गये। इस परिषद् ने ग्रीष्मकालीन शिविर, पाठ्यक्रम प्रशिक्षण, विशेष गोष्ठियाँ आदि का आयोजन किया। इस परिषद् द्वारा 'The Geographer' नामक वार्षिक पत्रिका का नियमित प्रकाशन क्षेत्र है।

उत्तर भारत भूगोल परिषद्, गोरखपुर North East Geographical Council] Gorakhpur)

इसका गठन 1968 में किया गया था। यह परिषद् स्नातकोत्तर स्तर एवं शोध छात्रओं के लिए हिन्दी की पत्रिका उत्तर भारत भूगोल पत्रिका का प्रकाशन करती है।

भारतीय भूगोलविद् परिषद् (Council of Geographers of India)

इसका गठन प्रथम भारतीय विज्ञान कांग्रेस के अधिवेशन में 1947 में किया गया। सन् 1953 में इसका नाम परिवर्तित करके भूगोल अध्यापकों की भारतीय परिषद् (Indian Council of Geography Teachers) कर दिया गया, लेकिन पुनः इसका नाम बदलकर सन् 1961 ने भारत की भूगोलवेत्ता परिषद् रखा गया।

भारतीय भूगोलवेत्ता परिषद्, नई दिल्ली (Indian Geographers Council, New Delhi) इसका गठन अगस्त 1955 में हुआ तथा डी.एन. वाडिया को अध्यक्ष तथा एम. पी. ठाकुर को मन्त्री चुना गया। सन् 1956 से इस परिषद् ने भारतीय भूगोलवेत्ता (Indian Geographer)उनके पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया।

हैदराबाद भूगोल परिषद्, हैदराबाद (Hydrabad Geographical Council, Hydrabad)

प्रो. बी. एन. चतुर्वेदी की अध्यक्षता में सन् 1962 में इसकी स्थापना की गयी तथा ए मोहम्मद को इसका मन्त्री चयनित किया गया। उस्मानियाँ विश्वविद्यालय, हैदराबाद के भूगोल विभाग के माध्यम से श्द दक्कन ज्यॉग्राफर (The Deccan Geographer) नामक भौगोलिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया गया।

भारत की प्रमुख भौगोलिक पत्रिकायें (Geographical Magazines of India)

भारत को विभिन्न भूगोल परिषदों, समितियों व विश्वविद्यालयों द्वारा अग्रलिखित भूगोल पत्रिकाओं का प्रकाशन किया जाता है, जिनका भूगोल के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है–

(1) दक्कन भौगोलिक समिति एवं उस्मानियाँ विश्वविद्यालय हैदराबाद का जर्नल

(2) 'Geographer' (अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, भौगोलिक समिति द्वारा प्रकाशित)

(3) 'Geographical Observer' (भौगोलिक समिति, मेरठ कॉलेज द्वारा प्रकाशित)

(4) Geographical Review of India (भारतीय भौगोलिक समिति, कोलकाता द्वारा प्रकाशित)

(5) Bombay Geographical Journal] Mumbai (बम्बई भौगोलिक समिति द्वारा प्रकाशित)

(6) National Geographical Journal of India] Varanasi (राष्ट्रीय भौगोलिक समिति वाराणसी द्वारा प्रकाशित)

(7) Geographical View Point (आगरा भौगोलिक परिषद् द्वारा प्रकाशित)

(8) Geography Teacher (भारत के भूगोल शिक्षकों का संघ, चेन्नई)

(9) Indian Geographical Journal (भारतीय भौगोलिक समिति, चेन्नई)

(10) Geographical Outlook (भूगोल विभाग, राँची विश्वविद्यालय)

(11) उत्तर भारत भूगोल पत्रिका (उत्तर भारत भूगोल परिषद्, गोरखपुर)

भारत में भूगोल परिषदों एवं शोध–पत्रिकाओं का विकास (1926–86)'

क्र.सं	भूगोल परिषद	शोध पत्रिका	प्रकाशन का वर्ष	टिप्पणी
1	2	3	4	5
1	इण्डियन ज्यॉग्राफिकल सोसाइटी चेन्नई	इण्डियन ज्यॉग्राफिकल	1926	त्रैमासिक

2	ज्याग्रॉफिकल सोसाइटी इण्डिया, कोलकाता	ज्याग्रॉफिकल रिव्यू इण्डिया, कोलकाता	1936	त्रैमासिक
3	अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी ऑफ ज्यॉग्राफिकल सोसाइटी अलीगढ़	ज्यॉग्राफर	1948	वार्षिक
4	बॉम्बे ज्यॉग्राफिकल एसोसिएशन, मुम्बई	बॉम्बे ज्यॉग्राफिकल मैगजीन	1953	अनियमित
5	. नेशनल ज्यॉग्राफिकल सोसाइटी ऑफ इण्डिया	नेशनल ज्यॉग्राफिकल जनरल ऑफ इण्डिया	1955	त्रैमासिक
6	भूगोल विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची	ज्यॉग्राफिकल आउटलुक	1956	अनियमित
7	.इलाहाबाद ज्यॉग्राफिकल सोसाइटी, इलाहाबाद	नेशनल ज्यॉग्राफर	1958	वार्षिक
8	मध्य प्रदेश भूगोल परिषद्, सागर	.....	1960	अंग्रेजी (स्थगित)
9	डेकन ज्यॉग्राफिकल सोसाइटी, हैदराबाद	डेकन ज्यॉग्राफर	1962	अर्द्धवार्षिक
10	मेरठ कॉलेज ज्यॉग्राफिकल सोयाइटी, मेरठ	ज्यॉग्राफिकल आब्जर्वर	1965	अनियमित
11	एसोसिएशन ऑफ नार्थ इण्डियन ज्यॉग्राफर्स भूगोल परिषद्, गोरखपुर	ज्यॉग्राफिकल थाट 1966 उत्तर भारत भूगोल पत्रिका (हिन्दी	1968	हिन्दी
12	जोधपुर. एसोसिएशन ऑफ ज्यॉग्राफर्स जोधपुर,	इंडियन जनरल ऑफ ज्यॉग्राफी	1966	स्थगित 1977
13	भूगोल कार्यालय, उदयपुर	भू–दर्शन (हिन्दी)	1967	त्रैमासिक, हिन्दी
14	सोसायटी फार ज्यॉग्राफिकल स्टडीज,	भू–दर्शन (हिन्दी)ज्यॉग्राफिकल नॉलेज	1968	अनियमित

	कानपुर			
15	रीजनल साइंस एसोसिएशन ऑफ इण्डिया, खड़गपुर	.इण्डियन जनरल ऑफ रीजनल साइन्स	1968	वार्षिक
16	नार्थ–ईस्ट इण्डिया ज्यॉग्राफिकल सोसाइटी, गौहाटी	हिल ज्यॉग्राफर	1969	अनियमित
17	ज्यॉग्राफिकल सोसाइटी, दयानन्द कॉलेज, अजमेर	अजमेर ज्यॉग्रफर अजमेर	1969	अनियमित
18	आगरा ज्यॉग्राफिकल सोसाइटी, आगरा	ज्यॉग्राफिकल व्यू प्वांइट	1970	अनियमित
19	इण्डियन ज्यॉग्राफिकल एसोसिएशन, रायपुर	इण्डियन ज्यॉग्राफी	1974	अनियमित
20	इण्डियन काउन्सिल ऑफ ज्यॉग्राफर्स, भूवनेश्वर	ट्रॉजेक्शन्स	1973	वार्षिक
21	अवध ज्यॉग्राफिकल सोसाइटी, लखनऊ	अवध ज्यॉग्राफर	1975	अनियमित
22	एसोसिएशनआफ ज्यॉग्राफर्स, पटना	ज्यॉग्राफिकल बुलेटिन ऑफ इण्डिया	1977	अर्द्धवार्षिक
23	एसोसिएशन ऑफ पापुलेशन ज्यॉग्राफर्स	पापुलेशन ज्यॉग्राफी	1979	वार्षिक
24	भूगोल विभाग राज. विश्वविद्यालय, जयपुर	ज्याग्राफिक स्टडीज	1968	अनियमित
25	नेशनलएसोसिएशन ऑफ ज्योंग्राफर्स, इण्डिया	अनल्स	1981	अर्द्धवार्षिक
26	इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ ज्योंग्राफी, पूणे	ट्रॉजेक्शन्स	1979	वार्षिक

27	ज्यॉग्राफिकल सोसाइटी फॉर दी नार्थ इस्टर्न हिल रीजन (इण्डिया) शिलांग	हिल ज्यॉग्राफर	1982	वार्षिक
28	एसोसिएशन ऑफ मारकेटिंग ज्यॉग्राफर्स ऑफ इंडिया, गोरखपुर	इण्डियन जनरल ऑफ मारकेटिंग ज्यॉग्राफी	1983	अर्द्धवार्षिक
29	दि गैंजीज ज्यॉग्राफिकल सोसाइटी ऑफ इण्डिया, ऋषिकेष	दि गैंजीज ज्यॉग्राफिकलष जनरल ऑफ इण्डिया	1986	वार्षिक
30	मध्य भारत भूगोल परिषद्, इन्दौर	ग्लोब	1988	
31	भू–विज्ञान विकास फाउंडेशन, नागपुर		2000	प्रारंभिक गठन सम्पन

Source: International List of Geographical Serials] edited by C-D- Harris and D- Fehman-

इस सारणी में पुरानी, अनियमित, पत्रिकाओं को छोड़ दिया गया है तथा शासकीय एवं अर्द्धशासकीय संस्थाओं को सम्मिलित नहीं किया गया है।

भारत के भौगोलिक वैज्ञानिक संस्थान (Geographical Scientist Institute of India)

भारत में विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों तथा भौगोलिक परिषदों के अतिरिक्त कुछ महत्त्वपूर्ण भौगोलिक वैज्ञानिक संस्थायें भी हैं, जो भूगोल के विकास में अपना योगदान देती हैं, ये अग्रलिखित राष्ट्रीय मानचित्रावली एवं विषयक मानचित्रण संगठन, कोलकाता (National Atlas & Thematic Mapping Organisation, Kolkata,NATMO) की स्थापना प्रो. एस.पी. चटर्जी के निर्देशन में सन् 1956 में हुई। यह भारत सरकार का संगठन है। इसके गठन का मुख्य उद्देश्य भारत का राष्ट्रीय एटलस तैयार भारत लेकिन कुछ समय उपरान्त इस संगठन द्वारा क्षेत्रीय एवं जिला स्तर पर भी मानचित्रण आरम्भ किया गया। वर्तमान में पद संगठन मानचित्रण के अतिरिक्त शोध, प्रशिक्षण एवं परियोजना कार्यों में संलग्न है जिसमें 200 से अधिक भूगोलवेत्ता कार्यरत हैं। इस संगठन ने सन् 1968 में अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल कांग्रेस तथा अन्तर्राष्ट्रीय कार्टोग्राफिक कांग्रेस का आयोजन किया इसके संस्थापक अध्यक्ष प्रो. चटर्जी को भारत सरकार ने पद्मभूषण की उपाधि से सम्मानित किया। तथा रॉयल ज्यॉग्राफिकल सोसाइटी ने 'मुर्चसन' पुरस्कार प्रदान कर सम्मानित किया। इस संगठन की प्रमुख गतिविधियाँ निम्नलिखित हैं।

(1) भारत के राष्ट्रीय एटलस को संकलित करना।

(2) क्षेत्रीय भाषाओं में राष्ट्रीय एटलस के मानचित्रों का निर्माण करना।

(3) सामाजिक एवं आर्थिक विकास पर पर्यावरणीय एवं सम्बन्धित प्रभावों के विषयगत मानचित्रों का निर्माण।

(4) मानचित्रण के त्वरित निर्माण हेतु स्वचालित मानरेखन तंत्र की स्थापना।

(5) भौगोलिक शोध।

(6) भारत सरकार द्वारा निर्देशित अन्य कार्य।

यह संगठन निम्न कार्य सम्पादित कर चुका है–

(1) भारत का राष्ट्रीय एटलस–हिन्दी एवं अंग्रेजी संस्करण
(2) भारत का पर्यटन एटलस
(3) भारत का सिंचाई एटलस
(4) भारत का कृषि संसाधन एटलस
(5) भारत का वन संसाधन एटलस
(6) कलकत्ता नगर एवं आस–पास का एटलस
(7) भारत का भू–संसाधन एटलस
(8) छात्रों के लिये संदर्भ एटलस
(9) भारत के समुद्रों का एटलस
(10) राष्ट्रीय स्कूल एटलस

इसके अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकाशन निम्नांकित हैं–

(1) दामोदर घाटी योजना का नियोजन एटलस
(2) उड़ीसा का जल विज्ञानी एटलस
(3) पश्चिमी बंगाल का जलविज्ञानी एटलस
(4) बिहार का जल विज्ञान एटलस
(5) समन्वित जल संसाधन विकास आयोग के लिये एटलस
(6) भारत की झलक
(7) मानचित्रों में भारत
(8) विभिन्न राज्यों के मानचित्र
(9) मैकमिलन स्कूल एटलस हेतु भारतीय मानचित्रों का निर्माण।

इसकी मानचित्र सम्बन्धी परियोजनायें निम्नलिखित हैं–

(1) स्वास्थ्य एवं बीमारियों का एटलस
(2) खेड़ा तथा आनंद जिलों का नियोजन एटलस
(3) पश्चिमी बंगाल औद्योगिक विकास निगम हेतु औद्योगिक भू–दृश्य का डीजीटल मानचित्रण
(4) पश्चिमी बंगाल के जलधारा अभयारण्य हेतु डीजीटल मानचित्रण
(5) राष्ट्रीय संसाधन संरक्षण परियोजना मानचित्र।

मानचित्र निर्माण के आगामी कार्यक्रम–

(1) सामाजिक–आर्थिक एटलस
(2) भारत का संक्षिप्त एटलस (हिन्दीध्अंग्रेजी, बंगाली भाषाओं में)
(3) भारत का विज्ञान एवं प्रौद्योगिको एटलस
(4) भारत का प्रदूषण एटलस (केन्द्रीय प्रदूषण संगठन के साथ)
(5) संवेदनशील पर्यावरणीय प्रखण्ड एवं औद्योगिक अवस्थिति का राज्यवाद मानचित्र (कईराज्यों का

मानचित्रण हो चुका है।)

(6) कलकत्ता म्यूनिसिपल निगम के साथ नगर निदेशिका, सम्पत्ति विवरण आदि का मानचित्रण

(7) राज्यों के ग्रामीण विकास मंत्रालयों के साथ विकास खण्डों के मानचित्रों का निर्माण।

यह संगठन निम्नलिखित विषयों से सम्बन्धित प्रशिक्षण कार्य भी सम्पादित करता है–

(1) क्षेत्रीय फोटोग्रामेट्री

(2) भौगोलिक सूचना तन्त्र (GIS)

(3) सुदूर संवेदन तकनीकी

(4) बहुरंगी (Multicolour) प्रकाशन ।

सर्वे ऑफ इण्डिया, देहरादून (Survey of India Dehradun)

इसकी स्थापना नवनिर्मित राज्य उत्तरांचल की राजधानी देहरादून में सन् 1767 में अंग्रेजों द्वारा की गयी। यह संगठन स्थलाकृतिक मानचित्र बनाने के लिए सर्वेक्षण करता है। इसने पाँच प्रकार की स्थलाकृतिक अंशचित्र मालाएँ प्रकाशित की हैं–

(1) दक्षिण एशिया अंशचित्र माला (Graph Series of Southern Asia)

(2) भारत तथा समीपवर्ती देशों की माला (Series of India and Adjoining Countries)

(3) अन्तर्राष्ट्रीय माला (International Series)

(4) भारत के स्थलाकृतिक अंशचित्र (Topographical Sheet of India)

(5) नगर प्रदर्शक पत्रक (Town Guide Maps)

भारतीय सांख्यिकी संस्थान का प्रादेशिक सर्वेक्षण विभाग, नई दिल्ली (States Surveyor Department of Indian Statistical Institute] New Delhi) इसे सन् 1956 में लिवरपूल विश्वविद्यालय (U-K-) के भूगोल के प्राध्यापक डॉ. ए.टी.ए. लियर मन्थ (A-T-A- Lear Month) के निर्देशन में खोला गया। इसका मुख्य उद्देश्य भारत के प्रदेशों का सीमांकन कर विवरण प्रस्तुत करना था। वर्तमान में यह इकाई योजना आयोग में संदर्शी नियोजन अनुभाग (Perspective Planning Division) दिल्ली में संचालित है। यह संगठन कृषि उत्पादन राष्ट्रीय लक्ष्य में प्रादेशिक ह्रास–स्थिति को ज्ञात करने तथा भारत में नगरीयकरण के प्रादेशिक प्रतिरूपों का अध्ययन भी करता है।

भारतीय मौसम विज्ञान विभाग (Meteorological Department of India)

यह वायुमण्डलीय दशाओं का नियमित अध्ययन तथा मौसमी अवलोकन (Weather Observations) करके इसकी दैनिक जानकारी प्रदान करके भविष्यवाणी प्रकाशित करता है। साथ ही मौसम सम्बन्धी मासिक और वार्षिक रिपोर्ट भी प्रकाशन करता है।

केन्द्रीय शुष्क प्रदेश शोध संस्थान, जोधपुर Central Arid Zone Research Institute (CAZRI)

काजरी CAZRI द्वारा भू–आकृति, जलवायु, जलप्रवाह, जलापूर्ति, मरुस्थल नियन्त्रण आदि विषयों पर शोध कार्य किये जाते हैं। इसकी वार्षिक पत्रिका 'Annals of the Central Arid Zone Research' प्रकाशित होती है। भारतीय जनगणना महापंजीयक, नई दिल्ली की मानचित्र शाखा (Indian Registrar General of Census] Cartograph Sector] New Delhi) यह विभाग भारतीय जनगणना विभाग द्वारा संगृहीत जनसंख्या आंकड़ों को मानचित्र के माध्यम से प्रकाशित करता है। इस विभाग के क्रमबद्ध विकास का प्रमुख श्रेय स्वर्गीय डॉ. पी. सेन गुप्ता को है जिन्होंने सोवियत संघ की भूगोल अकादमी में अपना योगदान देते हुए इसे भी गुणवत्ता प्रदान की।

कलकत्ता महानगरीय नियोजन संस्थान, कोलकाता (Calcutta Metropolitan Planning Organisation] Kolkata) यह संस्थान कलकत्ता नगर के लिए वृहद् योजना (Master Plan) बनाने के लिए संस्थापित हुआ था 1962 में प्रो. एस.पी. चटर्जी की अध्यक्षता में इसके भौगोलिक अन्वेषण अनुभाग स्थापना करके 16 भूगोलवेत्ता तथा 40 तकनीकी सहायक व प्रलेखकों सहित एक दल का गठन किया गया जिसका प्रमुख कार्य कलकत्ता नगरमाल (Conurbation), तथा महानगरीय क्षेत्र का अध्ययन करना था। भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद्, (नई दिल्ली) (Indian Council of Social Science Research&ICSSR)

इसके द्वारा भूमि उपयोग, कृषि, उद्योग, परिवहन, व्यापार, जनसंख्या, सामाजिक व्यवस्था सांस्कृतिक प्रतिरूप आदि विषयों से सम्बन्धित शोध कार्य किये जाते हैं। ICSSR के तत्त्वाववार में 1972 में भारत में किये भौगोलिक अनुसंधानों का एक सर्वेक्षण (A Survey of Research done in Geography in India) करवाया गया था।

भारत का मानव वैज्ञानिक सर्वेक्षण संस्थान (Anthropological Survey Institute of India)

इसका मुख्य कार्य आदिम जनजाति प्रदेशों (Aboriginal Tribal Areas) का सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक सर्वेक्षण करना है। भारत में भौगोलिक विकास को आधुनिक स्वरूप देने वाली अन्य प्रमुख संस्थाओं में भारतीय भू–वैज्ञानिक सर्वेक्षण विभाग (Geological Survey of India) भारत का तकनीकी आर्थिक सर्वेक्षण विभाग (Techno&economic Survey of India) नगरीय–ग्रामीण योजना संस्थान (Town and Country Planning of India) नई दिल्ली तथा भारत का योजना आयोग (Planning Commission) नई दिल्ली आदि है। अनुप्रयुक्त आर्थिक अनुसंधान परिषद् का मानचित्रण अनुभाग, नई दिल्ली (Cartographic Section of National Council of Applied Economic Research&N-C-A-E-R-) सन् 1980 के दशक में पूर्ववर्ती दोनों दशकों में विभिन्न पक्षों पर हुए शोध कार्यों का विश्लेषण हुआ तथा इसके विभिन्न आयामों पर सम्मेलन, संगोष्ठियाँ, अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आदि आयोजित किये गये। भारत में भूगोल की विभिन्न शाखाओं एवं उनके प्रमुख प्रकरणों पर भी शोधकार्य हुए जिनका उल्लेख भारतीय सामाजिक एवं वैज्ञानिक शोध परिषद् ICSSR Indian Council of Social Science Research] New Delhi) के ग्रन्थ में किया गया है, जो 'Survey of Research in Geography' शीर्षक से दो खण्डों में क्रमशः 1968 1972 में प्रकाशित हुआ था। इनमें भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में भूगोल के विभिन्न पक्ष का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसके सर्वेक्षण कार्य का निर्देशन ICSSR को भूगोल विज्ञान के लिए गठित स्थायी समिति द्वारा किया गया कि निम्नलिखित सदस्य

प्रो. वी.एल.एसे प्रकाश राव–सभापति

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

सदस्य गण

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

(1) प्रो. रामलोचन सिंह

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़।

(2) प्रो. मोहम्मद शफी

पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।

(3) प्रो. गुरुदेव सिंह गोसाल

उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद।

(4) प्रो. एस.एस. आलम

मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर।

(5) प्रो. आर.पी. मिश्रा

बम्बई विश्वविद्यालय, बम्बई।

6) प्रो. सी.डी. देशपाण्डे

जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

(7) प्रो. मुनिस रजा

पटना विश्वविद्यालय, पटना।

(8) प्रो.पी. दयाल

नेशनल एटलस ऑरगेनाइजेशन, कलकत्ता।

(9) प्रो. एस.पी. दास गुप्ता

(10) डॉ.जे.पी. नायक

सदस्य–सचिव ICSSR नई दिल्ली।

इस समिति द्वारा निर्देशित यह शोध सर्वेक्षण 9 उपविभागों में विभाजित किया गया जो, निम्नलिखित हैं।

(1) आर्थिक भूगोल

- (i) कृषि भूगोल
- (ii) औद्योगिक भूगोल
- (iii) भूमि उपयोग अध्ययन
- (iv) औद्योगिक संसाधन
- (v) वनसंसाधन
- (vi) परिवहन एवं वाणिज्य भूगोल ।
- (vii) संसाधन भूगोल–जन्तु, मत्स्य, खनिज, मृदा एवं जल संसाधन।

(2) नियोजन भूगोल

- (i) महानगरीय नियोजन
- (ii) प्रादेशीकरण और प्रादेशिक योजना
- (iii) मात्रात्मक भूगोल एवं योजना
- (iv) नदी घाटी विकास योजना

(3) ऐतिहासिक भूगोल सामग्री स्रेत

- (i) प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरण

(4) मानव भूगोल

- (i) जनसंख्या भूगोल
- (ii) ग्रामीण अधिवास भूगोल
- (iii) नगरीय भूगोल
- (iv) नगर प्रभाव क्षेत्र
- (v) मानव और वातावरण
- (vi) चिकित्सा भूगोल

(5) राजनीतिक भूगोल

- (i) राजनीतिक भूगोल– राज्यों की सीमायें, जनसंख्या तथा संसाधन, सैन्यवर, अनतर्राष्ट्रीय

सद्भावनाएँ।

(6) प्रादेशिक भूगोल

(i) प्रादेशिक भूगोल– प्रादेशिक संकल्पना, भारतीय पृष्ठभूमि, उद्देश्य एवं कार्य, प्रादेशिक भूगोल। (7) विधियाँ

(ii) वायुफोटो व्याख्या

(iii) क्षेत्र कार्य

(iv) मात्राकरण विधियाँ

(v) सुधार हेतु सुझाव

(8) शोध विधि तन्त्र में प्रशिक्षण

(9) निष्कर्ष एवं सुझाव

निष्कर्ष एवं सुझावों में भूगोल के निम्नलिखित 16 पक्षों में सुधार के लिए सुझाव प्रस्तुत किये गये थे–

(1) कृषि भूगोल

(ii) भूमि उपयोग

(iii) वन सम्पदा

(iv) संसाधन भूगोल

(v) औद्योगिक भूगोल

(vi) औद्योगिक संस्थान

(vii) परिवहन एवं वाणिज्य भूगोल

(viii) महानगरीय योजना

(a) प्रादेशीकरण एवं प्रदेश योजना

(b) नदीघाटी विकास योजना

(c) ऐतिहासिक भूगोल

(d) ग्रामीण बस्तियाँ

(e) नगरीय भूगोल

(f) मानव एवं वातावरण

(g) राजनीतिक भूगोल

(h) शोधविधि तन्त्र में प्रशिक्षण

इसी तरह 1969 से 1972 के दौरान भूगोल के उपरोक्त प्रकार से (नवीन प्रकरणों में) एवं विकसित तकनीकी के अनुसार सम्पादित शोध की उत्कृष्ट विवेचना 'Survey of Research पद Geography' के द्वितीय खण्ड में प्रस्तुत की गयी। इसके सम्पादक मण्डल में निम्नलिखित भूगोलवेत्ता नियुक्त किये गये–

नाम भूगोलवेत्ता

इकाई

प्रो. मुनिस रजा : मुख्य सम्पादक एवं सामाजिक भूगोल इकाई

प्रो. मोहम्मद शफी : आर्थिक भूगोल

प्रो. एजाजुद्दीन अहमद : ऐतिहासिक एवं राजनीतिक भूगोल

प्रो. गुरुदेवसिंह गोसाल : जनसंख्या एवं अधिवास भूगोल

प्रो. सी.डी. देशपाण्डे : प्रादेशिक भूगोल एवं नियोजन

इस खण्ड की इकाइयाँ एवं उपइकाइयाँ निम्नलिखित हैं–

(अ) आर्थिक भूगोल

(ब) संसाधन भूगोल

(स) कृषि भूगोल

भूमि उपयोग अध्ययन, औद्योगिक भूगोल, यातायात एवं वाणिज्य भूगोल, सामाजिक भूगोल, सामाजिक भूगोल का क्षेत्र एवं परिभाषा, जातियाँ, जनजातियाँ, धर्म, भाषा तथा बोलियाँ, सामाजिक रूपान्तरण का भूगोल, सामाजिक भूगोल के परित्यक्त पक्ष सामाजिक भूगोल में मात्रात्मक विधियाँ।

(3) ऐतिहासिक एवं राजनीतिक भूगोल.

(अ) ऐतिहासिक भूगोल

(ब) राजनीतिक भूगोल

(स) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का भूगोल

(4) जनसंख्या एवं अधिवास भूगोल

(अ) परिचय

(ब) जनसंख्या भूगोल

स) ग्रामीण अधिवास भूगोल

(य) नगरीय भूगोल

(5) प्रादेशिक भूगोल एवं नियोजन

(अ) प्रादेशिक भूगोल

(ब) प्रादेशिक नियोजन

भूगोल की विभिन्न शाखाएँ एवं उनका विकास

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व भूगोल में विविधता का अभाव पाया जाता था लेकिन 1960– 70 के दशक में भारतीय भूगोल में विविधता आयी तथा धीरे–धीरे भूगोल की स्वतन्त्र शाखाओं का विकास हुआ, जिसमें विभिन्न विश्वविद्यालयों, भौगोलिक परिषदों, वैज्ञानिक संगठनों तथा स्वतन्त्र भूगोलवेत्ताओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। वर्तमान में भारत में निम्नलिखित शाखाजे का स्वतन्त्र रूप में अध्ययन किया जा रहा है–

भौतिक भूगोल

भूगोल विषय का प्रारंभिक विकास भौतिक भूगोल के रूप में ही हुआ था। इसमें आकृति विज्ञान, जलवायु विज्ञान, समुद्र विज्ञान, मृदा विज्ञान तथा जैव–विज्ञान का अध्ययन किया जाता है।

भू–आकृति विज्ञान (Geomorphology) – यद्यपि भारत में प्रारंभिक काल में प्रादेशिक भूगोल का अध्ययन किया गया लेकिन कुछ प्रमुख भूगोलवेत्ताओं द्वारा भू–आकृति विज्ञान पर शोध कार्य किया गया। इनमें प्रो. छिब्बर का कुमायूँ हिमालय के भोम्याकारों के विकास (N-G-S-I- द्वारा प्रकाशित बुलेटिन सं. 20–1954), प्रो. एस.पी. चटर्जी का भाता के प्रमुख भौतिक प्रदेश (Proceedings of Summer School in Geography] Simla 1962), डॉ. आर.डी. दीक्षित का दून घाटी का विकास (Indian Geographical Journal iglndia&Vol. 4–1)

1959, एन. के. बोस का ऊपरी व्यार (माटी के भौतिक प्रदेश तथा चे पठार को स्थलाकृति (Geographical Red ऊपरी व्यास घाटी के तथा अहमद दक्षिणी प्रायद्वीप के भू–आकृति प्रदेश की भू–भौतिक विशेषतायें (Journal of Ranchi University (1)–1962) आदि प्रमुख शोधग्रन्थों ने भू–आकृति विज्ञान के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इनके अतिरिक्त ए.के. सेन गुप्ता (1957, पश्चिमी राँची पठार के पार प्रदेश की भूआकारिकी) इनायद अहमद (1958), छोटा नागपुर का भू–आकृतिक स्वरूप एच.एस. शर्मा। आर. वैद्यनाथन (1964, बेलारी प्रदेश के अर्द्धशुष्क क्षेत्र के भू–आकार), बी.एस. नेगी (Morphometric Determinants of the Stage of Cycle of Erosion&Geogobserver, 1976) एस. सिंह एवं आर. श्रीवास्तव (राँची पठार एवं बेलन बेसिन) का आकारमितिय (Morphometric) अध्ययन महत्त्वपूर्ण हैं। वर्तमान भौतिक भूगोल पर डॉ. सविन्द्रसिंह का योगदान प्रमुख रहा है। जलवायु विज्ञान (Climatology) विकास में जेड एहमद (Reliability Intensity and Deficiency of Rainfall in District Bijnor in the content of Agricultural Landuse (Geog- 1967), आर.सी. बनर्जी, डी. एस. उपाध्याय, जयपाल तथा डी.के. मिश्रा का योगदान भी सराहनीय है। जलवायु विज्ञान में महत्त्वपूर्ण अध्ययन जे.के. पटनायक एवं आर. राव तथा आर. रामनाथन का Characteristics of Indian Monsoon Rains (Indian Geog. 1977) रहा है। इसमें विगत 50 वर्षों की वर्षा के आंकड़ों का प्रयोग करके वर्षा का आकलन किया गया है। मृदा विज्ञान को स्वतन्त्र शाखा के रूप में स्थापित करने में राय चौधरी (1964), भट्टाचार्य (1956), पाठक (1958), आचार्या (1958), राय (1942), पुरी (1956), भारद्वाज (1961), मुखर्जी (1957), रेड्डी (1965), राय व शफी (1971) दक्षिणामूर्ति (1972), एस.के. डे. तथा प्रो. लक्ष्मी शुक्ला (जयपुर) आदि विद्वानों का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है।

आर्थिक भूगोल (Economic Geography)

आर्थिक भूगोल की विभिन्न शाखाओं– कृषि भूगोल, संसाधन भूगोल, औद्योगिक भूगोल तथा भूमि उपयोग सम्बन्धी अध्ययन पर 300 से अधिक महत्त्वपूर्ण शोधपत्र प्रकाशित हो चुके हैं, जिनके बाद ये शाखाएँ स्वतन्त्र रूप में स्थापित हुई। इनके विकास क्रम का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है–

(1) कृषि भूगोल (Agricultural Geography)

कृषि भूगोल का सर्वप्रथम कार्य दक्षिण भारत से आरम्भ हुआ इसमें के.सी. रामकृष्णन (कोयम्बटूर), एस.एन.सी. अय्यर (त्रिचि), गोपालन (तंजौर) आदि मुख्य हैं। एल.वाई. मुखजी व भट्ट ने महाराष्ट्र कृषि पर अध्ययन किया है। उत्तर भारत में सर्वप्रथम वी.एन. मुखर्जी उत्तर प्रदेश की कृषि भूगोल पर एडिनबरा विश्वविद्यालय से पीएच.डी की उपाधि प्राप्त की। पी. दयाल ने लन्दन विश्वविद्यालय से बिहार की कृषि भूगोल पर पीएच. डी. की उपाधि अर्जित की। इनके 1- Bhat L-S- Agriculture in the Lower Kumbhi Valley Kolhapur Dist- Bombay Geo& graphical Magazine. 1956. अतिरिक्त ए. बी. मुखर्जी, एस.डी. मिश्रा, एम.एन. वसन्त देवी, सेन गुप्ता, आदि के अध्ययन भी कृषि भूगोल के विकास में महत्त्वपूर्ण रहे हैं। कृषि में खाद्यान्न तथा नकदी फसलों पर भी उनके लिए आवश्यक भौतिक दशाओं के सन्दर्भ में अनेक महत्त्वपूर्ण अध्ययन किये गये हैं, जिनसे कृषि भूगोल को आधुनिक सहर मिला। इनमें सेन गुप्ता, बी.बनर्जी, एस.पी. चटर्जी, मोहम्मद शफी, ए.एच. सिदको आई.ए. कुरेशी तथा प्रो. लक्ष्मी शुक्ला के कार्य प्रमुख हैं, जिन्होंने कृषि उत्पादों तथा उनको समस्याओं पर विस्तार से प्रकाश डाला। प्रो. रन्धावा द्वारा 1959–68 के मध्य कृषि पर का खण्डों का ग्रन्थ लिखा गया इनमें 'Farmers of India' विशेष उल्लेखनीय है। इनमें प्रो. रमाया ने श्री प्रेमनाथ के सहयोग से भारत को कृषि प्रदेशों में विभक्त किया। 1961 में वेंकटेश्खास ने दक्षिण भारत के सभी राज्यों को एक भौगोलिक इकाई मानकर जलवायु, मृदा तथा अन्य भौतिक दशाओं का विश्लेषणात्मक सम्बन्ध स्पष्ट किया। 1970 में रन्धावा एवं सिंह तथा चौधरी एवं शर्मा ने विकसित कृषि तकनीकी, कृषि उत्पादकता एवं फसलों पर उपलब्ध ऋण व्यवस्था पर अध्ययन किया।

(2) भूमि उपयोग अध्ययन (Land use Studies)

भारत में भूमि उपयोग सम्बन्धी शोध एवं अध्ययन आरम्भ से ही प्रभावी रहा है, क्योंकि यह व्यावहारिक भूगोल का सर्वप्रभावी तथ्य है। इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम प्रो. एस.पी. चटर्जी ने 1941 में ध्यान आकर्षिक किया। इन्होंने भूमि की विभिन्न समस्याओं, कटाव, भू–अवनयन, वनोन्मूलन आदि का अध्ययन किया। इसके बाद डॉ. एस.डी. गुप्ता, डा. प्रकाश राव, डॉ. एम. शफी, डॉ. ओ.पी. भारद्वाज, डॉ. एस.डी. गुप्ता, डॉ. एस.एच. भारद्वाज तथा डॉ. वी.आर. सिंह ने उल्लेखनीय योगदान दिया। प्रो. मोहम्मद शफी ने लन्दन विश्वविद्यालय से पूर्वी उत्तर प्रदेश के भूमि उपयोग पर पीएच.डी. की उपाधि अर्जित की। इसके अन्तर्गत इन्होंने 'Randam Purposive Sampling"

के आधार पर 12 ग्रामों का चयन करके भूमि उपयोग का गहन अध्धयन किया है। साथ ही आपने फसलों के साहचर्य पर भी कार्य किया है। डॉ. आर. एल. सिंह व डॉ. मुकर्जी के कार्यों द्वारा भी भूमि उपयोग को गति मिली।

बीसवीं अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल कांग्रेस (1964) में प्रो. शफी ने अपने शोध पत्र में भूमि उपयोग पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करके ग्रामीण क्षेत्रों की भूमि उपयोग सम्बन्धी समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए बताया कि, 'Land use Planning in India should aim at recording the existing use of land in the first instance--- Followed by mapping of land capability or land potential."

(3) संसाधन भूगोल (Resource Geography)

संसाधन भूगोल का विकास कृषि, वन, पशु, खनिज, मृदा आदि संसाधनों पर किये गये शोध कार्यों के उपरान्त हुआ है। इसके विकास में प्रो. पी. दयाल, ए.एस.अय्यर, एस.एल. कायस्थ, एस.पी. चटर्जी, ई. अहमद, कृष्णामूर्ति, ओ.पी. भारद्वाज, ए.एन. रैना तथा आई.ए. कुरेशी के कार्य विशेष उल्लेखनीय हैं।

(4) औद्योगिक भूगोल

औद्योगिक अवस्थित एवं विकास की भारत में सर्वप्रथम व्याख्या श्री लोकनाथन ने प्रस्तुत की। इन्होंने भारतीय उद्योगों की समस्याओं के अध्ययन पर बल दिया। इनके उपरान्त प्रो. प्रकाश एव ने औद्योगिक स्थानीयकरणों पर, डॉ. घोष ने औद्योगिक विकास एवं समस्याओं के निराकरण पर, डॉ. करन ने जमशेदपुर के औद्योगिक भूदृश्य पर विशेष अध्ययन किया। सन् 1964 में प्रो.पी.दयाल ने भारत के लोहा–इस्पात एवं सीमेण्ट उद्योग का विस्तृत विवेचन किया।

(5) परिवहन भूगोल

परिवहन भूगोल के बारे में सर्वप्रथम 1929 में सूरीराजन ने अध्ययन किया। इनका विषय, बकिंघम नहर की यातायात व्यवस्था एवं दक्षिण भारत की यातायात व्यवस्था पर था। 1933 से 1947 के दौरान सुब्रह्मण्यम ने कोयम्बटूर, मालाबार, मदुराई, रामनद, त्रिचनापली, अनन्तपुर, मतेम एवं तंजौर जिलों की परिवहन तथा संचार व्यवस्था का अध्ययन किया था। इनके अतिरिक्त एस.ए, मजीद (बिहार का सड़क परिवहन), एम. गुहा (कलकता की यातायात व्यवस्था), एल.कुलकर्णी (बम्बई राज्य की परिवहन समस्याएँ), प्रो. आर. एल. सिंह, जे. सिंह आदि के योगदान श्री महत्त्वपूर्ण रहे हैं। प्रो. बी.एन. सिन्हा ने उड़ीसा की परिवहन एवं संचार समस्याओं का अध्ययन किया। परिवहन भूगोल के विकास में गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्रो.जगदीश सिंह का महत्त्वपूर्ण योगदान है। भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद ICSSR द्वारा प्रकाशित भौगोलिक अनुसंधान में परिवहन के विकास की स्थिति को निम्नानुसार स्पष्ट किया है

"Geographical Studies of the transport system of the country have be mainly atempted on a regional basis.These are only a few overall asseme of the country's transport needs.'

ऐतिहासिक भूगोल

ऐतिहासिक भूगोल के विकास में भूगोल के अतिरिक्त दूसरे विषय के विद्वानों के महत्त्वपूर्ण रहे हैं, जिनमें एल.एन. डे (1927) की पुस्तक "प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत का भौगोलिक शब्दकोश" तथा मजूमदार का "भारत का प्राचीन भूगोल" महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। सन्दर्भ में के. एम. पन्नीकर का "भारतीय इतिहास में भौगोलिक तत्व" एवं "प्राचीन भारत ऐतिहासिक भूगोल" भी महत्त्वपूर्ण है। नफीस अहमद ने "भूगोल में मुसलमानों के योगदान" आर. एल. सिंह ने मध्य गंगा के अधिवासों का विकास आदि अध्ययन प्रस्तुत किये जो ऐतिहासिक भूगोल के विकास में महत्त्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त ए.सी. दास (1921), बी.सी.लॉ (1940–60), पी. एल. भार्गव (1956), राय चौधरी (1960), सरकार (1960), डॉ. एस.एम. अली (1968) आदि विद्वानों ने प्राचीन ग्रन्थों का विस्तृत अध्ययन कर भौगोलिक ज्ञान के रूप में व्यवस्थित किया। इन्होंने वेद, पुराण, उपनिषद्, महाभारत, वाल्मीकि रामायण तथा जैन बौद्ध ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया। प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित प्राकृतिक एवं सामाजिक तत्त्वों की व्याख्या करने में जे.बर्ड (1840), ए.सी. दास (1921), बी.सी. लॉ (1946), राय चौधरी (1952–1960), आदि का योगदान सराहनीय है। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के अलवी ने मध्यकालीन भूगोल पर ग्रन्थ प्रकाशित किया। वाराणसी विश्वविद्यालय के बी. दुबे ने अपने शोध ग्रन्थ (Geographical Concept in

Ancien India) में प्राचीन भारत के भौगोलिक ज्ञान की विस्तृत विवेचना की है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के प्रो. मुनिस रजा ने ऐतिहासिक परिवेश में भारत में भूगोल के विकास को निम्नलिखित तीन उपभागों में विभक्त किया है–

1. भारत में प्राचीन काल में भूगोल सम्बन्धी ज्ञान का स्रोत,

2. प्राकृतिक एवं सामाजिक परिवेश के तथ्य, तथा

3. भूतल पर पायी जाने वाली स्थानिक भिन्नता एवं प्रादेशिक बाह्य स्वरूप की व्याख्या।

राजनैतिक भूगोल (Political Geography)

सर्वप्रथम भारत की राजनीतिक भूगोल पर प्रसिद्ध आस्ट्रेलियन भूगोलवेत्ता ओ.एच. के स्पेट ने अपना लेख 1948 में प्रकाशित किया, जिसमें भारत के विभाजन की स्पष्ट रूप रेखा प्रस्तुत की। प्रो. एस.पी. चटर्जी ने 1963 में स्पष्ट किया था कि भारत में अभी राजनीतिक भूगोल का विकास नहीं हो पाया है। प्रो. भट्टाचार्य, बोस, जानकी तथा करन आदि विद्वानों ने भारत– चीन सीमा विवाद एवं भारत–चीन युद्ध पर लेख प्रस्तुत किये। इनके अतिरिक्त आई.सी. रोथ, आर.एल. सिंह, आर.डी. दीक्षित, ए.एस. यादव के योगदान भी उल्लेखनीय हैं। डॉ. सुखबाल ने भारत का राजनीतिक भूगोल लिखा है। प्रो. आर.डी. दीक्षित का शोध प्रबन्ध 'Geography of Federalism' 1975 में प्रकाशित हो चुका है। विगत दो दशकों में इसके नवीन प्रकरण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का भूगोल पर भी अध्ययन किये जा रहे हैं। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय हे प्रो. आर.सी. शर्मा का कार्य इस सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण है। 1750 में हार्टशोर्न ने विश्व सन्दर्भ में क्रमबद्ध विकास एवं क्रियात्मक दृष्टिकोण के लिए राजनीतिक भूगोल का भौगोलीकरण की और विशेष महत्त्व को स्वीकार किया गया।।

जनसंख्या भूगोल :

भौगोलिक अध्ययन में जनसंख्या भूगोल को स्वतन्त्र शाखा के रूप में स्थापित करने का श्रेय प्रो. ट्रीवार्था को है। इन्हें जनसंख्या भूगोल का जनक (Father of Population Geography) कहा जाता है। भारत में सर्वप्रथम जनसंख्या भूगोल पर कार्य पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ के प्रो. गुरुदेव सिंह गोसाल ने किया, जिन्होंने प्रो. ट्रीवार्था के निर्देशन में विस्कॉसिन विश्वविद्यालय से भारत की जनसंख्या का भौगोलिक विश्लेषण विषय पर अपना डाक्टरेट (Ph.D). शोध ग्रन्थ प्रस्तुत किया। इसमें जनसंख्या के विभिन्न पक्षों की विस्तृत विवेचना की गयी है। इनके अतिरिक्त गोपालकृष्ण चान्दना तथा मेहता (पंजाब विश्वविद्यालय), एस.पी. चटर्जी (1962), एस. मेहता (1967), एच.लाल (1966), जी. कृष्णन् (1968), आर.पी. ओझा (1984), आर. रामचन्द्रन (1978) एवं मुनिस रजा (1990) के कार्य उल्लेखनीय हैं। जनसंख्या भूगोल को ICSSR 1972 के 'A Survey of Research in Geography' के अंक में मानव भूगोल का अंग माना गया है।

नगरीय भूगोल (Urban Geography)

भारत में नगरीय भगोल के विकास का श्रेय प्रो. आर. एल. सिंह को है। उनके प्रकाशन **Banarash-** A Study in Urban Geography तथा Gorkhpur- A study in Urban Morphology' इस सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण हैं। उनके निर्देशन में बनारस विश्वविद्यालय से डॉक्टर की उपाधि अर्जित करने वालों में उजागर सिंह (इलाहाबाद), निगम (लखनऊ), हरिहर (कानपुर) प्रमुख भूगोलवेत्ता हैं, जिन्होंने नगरीय भूगोल के विकास में अपना योगदान दिया। प्रो. काशीनाथ सिंह ने उत्तर प्रदेश के नगरों का कार्यात्मक विभाजन किया। ओमप्रकाश सिंह ने उत्तर प्रदेश में केन्द्र स्थलों का, वी. चटर्जी ने हावड़ा के नगरीय भूगोल पर, एस. मुखर्जी (1958) नागपुर शहर के विकास पर, उस्मानिया विश्वविद्यालय के प्रो. मन्जूर आलम ने हैदराबाद महानगर तथा उसके प्रदेश पर अध्ययन किया है। इनके अतिरिक्त प्रो. रफीउल्लाह ने नगरों के कार्यात्मक वर्गीकरण पर नवीन विधि प्रस्तुत की है। पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ के प्रो. गुरुदेव सिंह गोसाल ने नगरीय भूगोल पर कार्य किया तथा निम्नांकित शब्दों में परिभाषित किया–"Urban Geography **in** the Geographic Study of urban places which value grow and exist as service centres largely for their surrounding areas" अर्थात् नगरीय भूगोल उन शहरी स्थानों का भौगोलिक अध्ययन है, जो कि आसपास के क्षेत्रों के लिए सेवा–केन्द्रों के रूप में उत्पन्न होते हैं तथा वृद्धि करते हैं। सन 1980 के उपरान्त भारतीय भूगोल के शोध एवं शिक्षण कार्य में विविधता आयी है। विश्व में भूगोल की विभिन्न शाखाओं के सन्दर्भ में भारतीय विकास भी पीछे नहीं रहा है। इस सदर्भ में प्रो. मुनिस रजा ने

लिखा है कि भारत का भूगोल उस वृद्धाकार जीव की तरह है, जिसकी रीढ़ की हड्डी ही नहीं है। इस प्रकार वर्तमान में भारत में भूगोल की शाखाओं में शोध एवं शिक्षण कार्य हो रहा है।

मुख्य शाखा	**उप शाखाएँ**
(1) भौतिक भूगोल	1.भू–आकृति विज्ञान
	2.जलवायु विज्ञान
	3.समुद्र विज्ञान
	4. मृदा विज्ञान
(2) मानव भूगोल	1. जनसंख्या भूगोल
	2. ग्रामीण बस्ती भूगोल
	3. नगरीय भूगोल
	4. आयुर्विज्ञान भूगोल
	5.कल्याणकारी भूगोल
(3) पर्यावरण भूगोल	1. मानव पारिस्थितिकी
	2. जैव भूगोल
	3. पादप भूगोल
	4. जन्तु भूगोल
	5. पारिस्थितिकी भूगोल
(4) आर्थिक भूगोल	1. कृषि भूगोल
	2. औद्योगिक भूगोल
	3.विपणन भूगोल
	4.परिवहन तथा व्यापारिक भूगोल
	5.संसाधन भूगोल
	6.भूमि उपयोग
	7.जल संसाधन भूगोल
(5) राजनीतिक भूगोल	
(6) सामाजिक भूगोल	
(7) सांस्कृतिक भूगोल	
(8) प्रादेशिक भूगोल	
(9) ऐतिहासिक भूगोल	
(10) मानचित्र कला	1. सांख्यिकीय भूगोल
	2. सुदूर संवेदन
	3. भौगोलिक सूचना तन्त्र (GIS)
(11) नियोजन भूगोल	

भूगोल की नवीनतम शाखाएँ (Recent Branches of Geography)

(12) शांति का भूगोल (Geography of the Peace)

(13) धर्म सम्बन्धी भूगोल (Geography of Religion)

(14) सैन्य भूगोल (Military Geography)

(15) मनोरंजन भूगोल (Geography of Entertainment)

(16) साहित्य भूगोल (Literary Geography)

(17) निर्वाचन भूगोल (Electrol Geography)

(18) तात्विक भूगोल (Spiritual Geography)

(19) कल्याणकारी भूगोल (Welfare Geography)

(20) क्रान्तिकारी भूगोल (Radical Geography)

(21) अपराध का भूगोल (Geography of Crime)

(22) भूगोल एवं काम वासना (Geography and Sexuality)

भारत में भूगोल विषय में अध्ययन की जाने वाली उपरोक्त शाखाओं से सम्बन्धित प्रमुत भूगोलवेत्ता निम्नलिखित हैं जिनका इस विषय के विकास में उत्कृष्ट योगदान रहा है–श्री मंगा आलम, गोपाल कृष्ण, ओ.पी. भारद्वाज, डी. एस. श्रीवास्तव, काशीनाथ सिंह, एम.एन. निगम आर.के. निगम, ओ.पी. सिंह, बी.पी. राव, रामनगीना सिंह, एच.एन. मिश्रा, उजागर सिंह, पे अमृतलाल (नगरीय भूगोल), आर.पी. मिश्रा, एजाज अहमद, जे.के. राउतरे, आर. एल. सिंह (प्रादेशिक नियोजन), प्रो. जी.एस. गोसाल, आशीष बोस, आर.एस. दुबे, आर.सी. चारत (जनसंख्या), सी.पी. सिंह, आर.डी. दीक्षित, आर.सी. शर्मा, के. जेड अमानी, पी.आर. चौहान, एस. के दीक्षित, मोहम्मद अली (राजनीतिक भूगोल), एच.पी. दास, एम.आर. चौधरी, हरीहर सिंह, सी.बी. तिवारी, सन्तोष शुक्ला, सी.पी. सिंह (औद्योगिक भूगोल), एल.के. सेन, सुधी वनमाली, महातम प्रसाद (सेवाकेन्द्र), ए. रमेश, एस.सी. सिन्हा, कैलाश चौबे, आर. एल. सिंह, रईस अक्तर (स्वास्थ्य भूगोल), वी.सी. मिश्रा, टी.पी. सेनगुप्ता, बी. लहरी, बालेश्वर, नन्देखा शर्मा, वी.के. श्रीवास्तव (प्रादेशिक विकास एवं नियोजन), के. आर. दीक्षित, एस.के. पाल सावित्री बर्मन, आर. के. राय, के. बागची, ए.बी. मुखर्जी, सविन्द्र सिंह (भौतिक भूगोल) बी. जी तामस्कर, एन. शर्मा, एस. के. शर्मा, आर. एस. दीक्षित, पी. के. श्रीवास्तव, विश्वनाथ, उधवरान श्रीमती के. आर. श्रीवास्तव, कैलाश तिवारी, त्रियुगीनाथ, रामसूरत, वेणु त्रिवेदी, निजामुद्दीन खार निरंकरलाल, विजय चौधरी, रवीन्द्रसिंह (विपणन भूगोल), मोहम्मद शफी, रफीउल्ला, एस. सो शर्मा, महात्मा सिंह, हरिहर गिरी (भूमि उपयोग), रामचन्द्रन, डी. के. सिंह, अस्लम महमुद मुनिस रजा (सांख्यिकीय भूगोल), आर.एल. सिंह, के. पी. धुरन्धर, जे.के. नायर, जे.पी. शर्मा हीरालाल (मानचित्रकला), मोहम्मद शफी, रफ्फीउल्ला, इनायद अहमद, चम्पा मित्रा, प्रमित कुमार, जसबीर सिंह, बी.बी. सिंह, जी.बी. सिंह, जे.एन. पाण्डेय, आभा लक्ष्मी सिंह, मोहम्मद, लक्ष्मी शुक्ला (कृषि भूगोल), आर.एल. सिंह, वी. के. श्रीवास्तव, के. एम. मुंशी, सिंग जयप्रकाश राय, फिरतू राम, रामनयन राय, सुशीला सिंह, श्रीकमल शर्मा (प्रादेशिक भूगोता बालेश्वर ठाकुर, एन.के. डे, एम.एम. जाना, लक्ष्मी शुक्ला (भूमि विकास), आर. बी. सिंह वी.सी. झा, एच.पी. गौतम, पी. नाग, एन.सी. गौतम (सुदूर संवेदन तकनीकी एवं GIS)।

15.4 सारांश

आधुनिकता और उत्तर आधुनिकतावाद भूगोल के महत्वपूर्ण संकल्प बनाए हैं जिसमें उत्तर आधुनिकतावाद को समझने के लिए आधुनिकतावाद को समझना आवश्यक है। भूगोल में इसके संकल्पनात्मक विचारों को समावेश 20वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही किया गया जो भूगोल को वैज्ञानिकता के नजदीक ले जाते हैं तथा कभी इस समाज विज्ञान के नजदीक ले जाते हैं। इन विचारधारो की नींव भूगोल में इससे भी पहले डाली जा चुकी थी। इनके साथ ही यह पूंजीवाद और औद्योगीकरण जैसे विचारों का भी इस समय समावेश करती है। समाज विज्ञान के विषयों जिसमें मार्क्स का योगदान सराहनीय है उसमें भी इससे संबंधित बातें कही गई है। आधुनिकतावाद का अर्थ आधुनिकीरण और पुनर्निर्माण की सतत प्रगतिशील प्रक्रिया के संदर्भ में लिया गया है

तथा उत्तर आधुनिकता दर्शन कला और समाज वैज्ञानिक चिंतन की अपेक्षाकृत नई धारा है। इसी क्रम में मानव भूगोल के विकास के साथ ही इस संकल्पना को मानव भूगोल से भी जोड़कर देखा गया है। ग्रेगरी ने इस पर प्रकाश डालते हुए उत्तर आधुनिकतावादी मानव भूगोल की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डाला है।

15.5 पारिभाषिक शब्दावली

- **आधुनिकता** – आधुनिकताआधुनिकता से तात्पर्य सट्टाज्ञान और सामाजिक व्यवहार पद्धति के उसे विशेष प्रकार के संयोग से है जिसका विकास 16वीं व 17वीं शताब्दी में यूरोप में प्रकट हुआ।
- **उत्तरआधुनिकतावाद** – उत्तर आधुनिकतावाद 1970 के दशक में मानव भूगोल में अर्थनीतिक परिदृष्टि के प्रचार प्रसार के साथ निकट से जुड़ी हुई थी।

15.6 बोध प्रश्न

15.6.1. दीर्घ उत्तरीय प्रश्नोत्तर

9. आधुनिकतावाद के विस्तृत व्याख्या कीजिए।
10. आधुनिकतावाद से उत्तर आधुनिकतावाद के क्रमिक विकास की व्याख्या कीजिए।

15.6.2. लघु उत्तकीय प्रश्नोत्तर

1. यह डांस ने आधुनिकतावाद के चार आधारभूत संस्थाएं कौन सी बताई है।
2. डियर नमक विद्वान द्वारा बताए गए उत्तर आधुनिकतावाद के तीन रूपों के बारे में बताइए।

15.6.3. बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर

1. उत्तर अग्निकतावादी संकल्पना का भूगोल में समावेश कब हुआ।

(क) 20वीं सदी में। (ख) 19वीं सदी में।

(ग) 18वीं सदी में। (घ) 17वीं सदी में।

उतरमाला– 1. (क) 20वीं सदी में।

15.7. संदर्भ ग्रंथ सूची

- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन का क्रम विकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर
- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन के मूलाधार, ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, मालिक बुक कम्पनी जयपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, परिचयात्मक भूगोल, मालिक बुक कम्पनी, जयपुर
- Dickinson, R.E. Makers of Modern Geography, London.
- Hartshorne, R- The Nature of Geography AAAG.
- Harvey D. Explanation in Geography. Ed. Antold London.
- Mastin G.F. All possible world. Oxford London.

इकाई– 16 तन्त्र की संकल्पना, तन्त्र के प्रकार, भूगोल में तन्त्र विष्लेषण

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 तन्त्र की संकल्पना

16.3.1. तंत्र की संरचना

16.3.2. क्षेत्र की सीमाएं

16.3.3. तन्त्र का पर्यावरण

16.4 तन्त्र के प्रकार

16.4.1. होम्योक्टेटिक तंत्र

16.4.2 अनुकूलशील या एडाप्टिव

16.4.3. गत्यात्मक तंत्र

16.5 भूगोल में तन्त्र विश्लेषण

16.6 सारांश

16.7 पारिभाषिक शब्दावली

16.8 बोध प्रश्न

16.1 प्रस्तावना (Introduction)

भूगोल की आधुनिक या नवीन प्रवृत्तियों में तन्त्र या विधि सिद्धान्त भी एक है। यह एक विश्लेषण परक साधन है जो सभी विज्ञानों में कार्य पद्धति के रूप में विकसित हुआ है। यह विभिन्न विधियों के रूप में प्रयुक्त किया गया है। सन 1937 में शिकागों में आयोजित एक वैज्ञानिक संगोष्ठी में विख्यात जीव वैज्ञानिक फॉन बर्टनलाफी ने सर्वप्रथम इस अवधारणा पर एक वकत्वय दिया था। इसके बाद सन 1972 में इसे परिभाषित करने का कार्य पी. ई. जेम्स ने किया तथा बताया की तंत्र एक समष्टि है। इसके सारे अवयव एक दूसरे से सम्बन्धित है यह समग्रता में ही कार्यरत रहता है यह समग्रता व्यक्ति, राज्य, संस्कृति अथवा किसी व्यापारिक संगठन की हो सकती है। तंत्र एक प्रकार का विचार है जिसमें विभिन्न विषय आपस में जुड़े होते है तथा ये एक श्रृंखला के रूप में पाये जाते है। भूगोल विषय में कार्यवाद के समावेश के बाद तंत्र विश्लेषण अपरिहार्य हो गया क्योंकी तंत्र की संकल्पना ही कार्यात्मक सिद्धान्त का मूलाधार है। यह विशिष्ट गुण–धर्मों युक्त वस्तुओं एवं तत्वों का एक गुच्छ है जो परस्पर विभिन्न प्रकार से अन्तर्सम्बन्धित होते है। तंत्र को कई प्रकार के विशिष्ट उदाहरणों से समझा जा सकता है। जिसका उल्लेख आगे अध्याय में किया जाएगा ।

16.2.उद्देश्य

- तंत्र की संकल्पना को स्पष्ट करना।
- क्षेत्र के मूलाधार भूगोल के कार्यात्मक स्वरूप करना।
- तंत्र के प्रकारो पर प्रकाश डालना।
- भूगोल में तंत्र विश्लेषण के स्वरूप को स्पष्ट करना।
- तंत्र विश्लेषण से जुड़े सभी पहलूओं को प्रकाशित करना।

- तंत्र के माध्यम से भूगोल में अन्तर्सम्बधो के अध्ययन को स्पष्ट करना।
- तंत्र विश्लेषण द्वारा किसी बिन्दु की मूल बात को समझना।

16.3. तंत्र की संकल्पना

जैसा की ऊपर प्रस्तावना में बताया गया है भूगोल की नवीन प्रवृतियों मैं तंत्र या विधि सिद्धान्त भी एक विषय है यह एक विश्लेषण परक साधन है जिनमे सभी तत्व आपस में अंतर्सम्बधित है। वह विशिष्ट गुण–धर्मो युक्त वस्तुओं व तत्वों का एक गुच्छ है जो परस्पर विभिन्न प्रकार से अन्तर्सम्बधित होते है किसी भी विषय में तंत्र के अन्तर्गत निम्न तत्वो का होना अनिवार्य है।

1) घटक तत्वों का गुच्छ जिसकी पहचान तत्वों के विभिन्नतापूर्ण गुर्ण धर्म में निहित है उनको स्पष्ट करता।
2) तत्व के गुण धर्मों के मध्य अन्तर्सम्बन्धों की श्रृंखलाएं।
3) तत्वों के उन गुण धर्मों एवं पर्यावरण के मध्य अन्तर्सम्बन्धों की श्रृंखलाये जो तंत्र से जुड़ी हुई है।

तंत्र एक विचार है जो किसी भी विषय को उसकी विभिन्न श्रृंखलाओं व उससे संबधित विचारों को जानने में सहायता करता है। उदाहरण के लिए जैसे शहर में जलापूर्ति की एक व्यवस्था है। इसके लिए ऊँचाई पर एक टैंक जल संचय के लिए है जिसमें से अनेक घरों में नलों का गुच्छ होता है टैंक व नलों का गुच्छ कुछ विशिष्ट गुण–धर्म युक्त होता है जो जल आपूर्ति के लिए बनाए जाते हैं। इसके लिए एक मुख्य पाइप लाइन तथा उससे कई छोटी–छोटी पाईप लाईने डाली जाती है। इनके रख रखाव व मरम्मत के लिए भी पुख्ता इंतजामात किए जाते है। जिनके मध्य एक प्रकार का अन्तर्सम्बन्ध होता है। संचयी टैंक अपने बाह्य पर्यावरण अर्थात जल स्रेत मे जुड़ा होता है तथा उनकी क्षमता जल उपलब्ध की दशाओं, विद्युत आपूर्ती पम्पसेट की क्षमता आदि के अनुरूप होती है। दूसरी ओर घरों में लगे नल उपभोक्ता की जरूरतों के अनुरूप होते हैं। यह सब एक छोटे पैमाने के तंत्र का प्रतीक है।

तंत्र की एक अन्य प्रमुख विशेषता यह भी है उसमें किसी न किसी रूप में ऊर्जा का प्रवाह होता है चाहे वह सूचना तंत्र, यातायात का प्रवाह तंत्र जल के प्रवाह तंत्र के रूप में हो उनमें ऊर्जा का प्रवाह होता है। ऊर्जा ही तंत्र को गतिशील करती है। उसमें विभिन्न प्रकार की शाखाओं व संरचनाओं का विकास करती है। ऊर्जा का प्रवाह जितना अधिक होगा तंत्र उतना ही अधिक फैलेगा। यदि प्रवाह कम कर दिया जाए तो तंत्र संकुचित हो जाएगा. जैसे किसी पेड़ में पोषक तत्वों व जल की आपूर्ति व बढ़ा दी जाए तो वह और अधिक विस्तारित रूप से फैलेगा।

16.3.1. तंत्र की संरचना

तंत्र के दो मूल घटक है।

1) **घटकतत्व**–यह तंत्र की मूल इकाई है जो इकाई तंत्र के पैमाने से परिभाषित होती है एक वृहत स्तर पर जो घटक तत्व मात्र इकाई है, लघु उत्तर पर वही सम्पूर्ण तंत्र माना जाता है। जैसा कि एक वृहद पारिस्थितिक तंत्र में रेल, सड़क, वायुमार्ग घटक तत्व माने जाते है जो आपस में एक दूसरे से सम्बद्ध है जुड़े हुए है मिलकर एक तन्त्र का निर्माण करते है। इसी के अन्तर्गत रेलो का मार्ग जाल एक तत्र है तथा उसके स्टेशन, जंक्शन, चाल, वाहन आदि को घटक तत्व माना जा सकता है। इस प्रकार तन्त्र एवं घटक तत्व की परिभाषा प्रेक्षण स्तर के अनुसार परिवर्तनशील है। तन्त्र का कोई घटक तत्व एक इकाई के रूप में नही वरन विशेष गुण–धर्म युक्तता हेतु महत्वपूर्ण होता है। जैसे किसी के कार्यालय में कार्य करने वाले सभी कर्मचारी एक तंत्र के रूप में कार्य करते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि घटक तत्व तंत्र से जुड़ा हुआ है। यह तन्त्र का ही एक ही हिस्सा है। एक तंत्र के अन्तर्गत कई घटक तत्व हो सकते है जो मिलकर तन्त्र का निर्माण करते है। तंत्र की इस संकल्पना को कई स्तरों पर रखकर इसे समझा जा सकता है।

अन्तर्सम्बन्धया श्रृंखलायें

घटक तत्व के साथ श्रृंखलाएं भी तंत्र के अभिन्न अंग है श्रृंखलाओं को तीन प्रकारों में व्यक्त किया जा सकता है।

(अ) क्रमिक श्रृंखला (सम्बन्ध)

इसमें विभिन्न घटक तत्व अनुक्रमणीय श्रृंखला से आबद्ध होते है। उसमें अ–ब–स प्रकार का कार्य कारणवत सम्बन्ध रहता है। इसमें किसी भी तत्व को हटाया नहीं जा सकता क्योंकि यह कार्मिक है एक श्रृंखला के रूप में है। जिसमें किसी भी तत्व की अनदेखी नहीं की जा सकती है। तत्वों का संयोजन रखने से ही इसमें निरन्तरता बनी रहती है और एक, विकसित तन्त्र का निर्माण हो पाता है। जैसे टैंक से नलों में पानी पहुँचेगा और नल इसे घरों तक पहुंचाएगें।

(ब) समानान्तर श्रृंखला

इसके अन्तर्गत दो घटक तत्व एक साथ किसी तीसरे तत्व से प्रभावित होते है जैसे रेल परिवहन के कन्ट्रोल रूम है गड़बड़ी होने पर एक साथ स्टेशन मास्टर व रेल चालक प्रभावित होंगे। इस तरह यदि जहां से तंत्र शुरू हो रहा है वही पर गडबडी आ जाए तो आगे का तंत्र संचालित नहीं हो पाएगा।

(स) पश्च प्रभावी –

किसी तंत्र में श्रृंखला के अन्तर्गत संचालित कई घटक तत्व स्वयं को प्रभावित करते है। यह अन्य सम्बन्धित घटक तत्वों को भी प्रभावित करेगा। इसलिए किसी तन्त्र में श्रृंखला के अन्तर्गत संचालित कई घटक तल स्वयं जहां मे तन्त्र की शुरूआत हो रही है उस पर यह निर्भर करेगा की उससे जुड़े हुए तत्वों को वह कितना आगे तक ले जा पाता है। यदि रेल का इंजन मार्ग मे ही रुक जाएगा तो वह स्वयं के साथ यात्रियों को व स्टेशनों को भी प्रभावित करेगा। इसलिए तंत्र के मुख्य घटक को अपनी स्थिति का सही अंदाजा होना चाहिए।

(द) मिश्रित श्रृंखला

ऊपर तंत्र की संरचना के दो घटको का जिक्र किया गया है जो सभी एक श्रृंखला के रूप में संचालित होकर एक दूसरे से अन्तर्सम्बधित है। इस प्रकार के सम्बन्ध को सरल मिश्रित अन्तर्सम्बन्ध भी कह सकते है जिसमें सभी तत्वों के सम्मिलित सहयोग व प्रभाव से ही तत्र का संचालन किया जा सकता है।

घटक तत्व व उनके मध्य अन्तर्सम्बन्ध के अतिरिक्त तंत्र का आचरण अर्थात उसकी कार्यप्रणाली भी महत्वपूर्ण है। तंत्र की कार्य प्रणाली, प्रवाह, प्रेरणा, अनुक्रिया, निविश उत्पाद आदि की ओर इंगित करती है। इसी के अन्तर्गत तंत्र की आन्तरिक व बाह्य कार्यप्रणाली तथा उसका पर्यावरण के साथ अन्तर्सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। अर्थ तंत्र में विभिन्न उपभोक्ता वस्तुओ की अंतिम मांग तथा उसके आधार पर निर्मित विभिन्न वस्तुओं की मांग– पूर्ति का चार्ट इसका उत्कृष्ट उदाहरण है यदि अर्थतन्त्र की आन्तरिक दशाओं पर ध्यान दिया जाए तो विभिन्न वस्तुओं के निवेश–उत्पाद श्रृखला को उनके तकनीकी गुणांक के आधार पर निर्मित किया जा सकता है जैसे अर्थ तंत्र में 100 मिलियन टन इस्पात की अंतिम खपत है और एक टन इस्पात निर्माण के लिए कितना कोयला, कच्चा लोहा, मैगनीज, चूना लगता है। यह गुणांक है तो इन सबको अलग–अलग मांग ज्ञात की जा सकती है। इन सब वस्तुओं को इकट्ठा करने की परिवहन गुणांक भी ज्ञात की जा सकती है। इस प्रकार सम्पूर्ण अर्थतन्त्र का प्रेरक –अनुक्रिया प्रारूप में चार्ट तैयार किया जा सकता है। इसके साथ यह भी देखा जा सकता है कि देश में समय के साथ जनसंख्या में कितनी वृद्धि होती है और बढ़ती जनसंख्या में वृद्धि मांग में वृद्धि करती है। जिसे प्रदर्शित किया जा सकता है। इस प्रकार तंत्र की आन्तरिक क्रियाशीलता तथा बाल पर्यावरण से अन्तर्सम्बन्ध का विवेचन तंत्र के आचरण के अंतर्गत आता है। तंत्र अध्ययन की एक ऐसी विद्या है जिसे किसी भी पहलू पर खवकर देखा जा सकता है।

16.3.2. क्षेत्र की सीमाएं

तंत्र की भी सीमाएं होती है। जैसे किसी भी समाज विज्ञान के विषय की सीमाएं होती है उसी प्रकार

तंत्र की कार्यशीलता का विवेचन तभी सम्भव है जब उसकी सीमाएं सुस्पष्ट हो। यदि तंत्र सुपरिभाषित हो और उसके घटक तत्व सर्वथा विलग हो तो उसकी सीमाएं निर्धारित की जा सकती है। किसी भौगोलिक प्रदेश अपना कितनी सामाजिक समुदाय अथवा पारिस्थितिकी इकाई का भी विवेचन तन्त्र परिप्रेक्ष्य में किया जा सकता है ऐसी स्थिति में व्यक्तिगत विवेक द्वारा तंत्र को परिसीमित करना पडता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि सीमाएं किसी तथ्यात्मक आधार का अनुसरण नहीं करती है अथवा वास्तविक दशाओं की अनदेखी करती है। इसका अर्थ मात्र इतना है कि 'तन्त्र का परिसीमन, उद्देश्य के अनुरूप किया जाता है। तंत्र तक उद्देश्य को लेकर शुरू होता है। जहां उद्देश्य पूर्ण हो जाता वहाँ यह को पूर्ण हो जाता है।

16.3.3. तन्त्रका पर्यावरण

तंत्र के पर्यावरण के अन्तर्गत उसके उच्च स्तरीय तंत्र एवं उसके ऐसे घटकतत्व समाहित होते हैं, जिनका प्रत्यक्ष प्रभाव अध्ययन के दौरान तंत्र के आचरण पर पड़ता है। ऐसे सभी तथ्य जो जिनका तन्त्र पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है तथा जो सार्थक नही होते है तन्त्र के पर्यावरण में शामिल नहीं किए जाते है जैसे एक औद्योगिक तंत्र के पर्यावरण के लिए मिट्टी उस तन्त्र का अंग नहीं है। परन्तु देश की आयात–निर्यात नीति उसके व पर्यावरण का अंग है जैसे किसी राज्य स्तरीय राजनीतिक तन्त्र के लिए राष्ट्र स्तरीय राजनीति बाह्य पर्यावरण है कुछ स्थितियों में तंत्र के दो पर्यावरण भी हो सकते है जैसे वहां का कोई राजनीतिक दल की राष्ट्र के लिए राजनीतिक गतिविधियां व अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी आन्दोलन। इस प्रकार तंत्र का अपना एक निश्चित पर्यावरण होता है जिसके अन्तर्गत तंत्र फलता–फूलता है विकसित होता है। अपना प्रसार करता है तथा अपने घटक तत्वों को इस पर्यावरण में जोड़े रखता है।

16.4. क्षेत्र के प्रकार

सामान्यतय तंत्र को दो प्रकारों में विभाजित किया जाता है।

(1) खुला तंत्र

(2) बन्द तन्त्र।

खुला तंत्र वह तंत्र होता है जिसमें तंत्र व उसके पर्यावरण से अन्तर्क्रिया का ध्यान रखा जाता है खुला तंत्र अधिक व्यापक होता है परन्तु विश्लेषण की दृष्टि से अत्यन्त जटिल क्योंकि इसमें दृष्टि, घटक तत्वों के परस्पर अन्तर्सम्बन्ध ही नहीं वरन् उनके व पर्यावरण के तत्वों से अन्तर्सम्बध पर भी रहता है। इसके विपरीत बन्द तंत्र में तंत्र के घटक तत्वों में परस्पर अन्तक्रिया तक ही ध्यान सीमित रहता है। तंत्र के वर्गीकरण के कई अन्य आधार भी है जिनमें तंत्र की दशा के अनुसार इसका वर्गीकरण होम्योस्टेटिक एडापटिव तथा गत्यात्मक आधार पर इसे तीन वर्गों में रखा जा सकता है किसी तंत्र की दशा उसके उत्पाद का बोध कराती है अर्थात किसी तंत्र से क्या प्राप्त होगा। तंत्र एक प्रकार विश्लेषण है जिससे कुछ–न–कुछ प्राप्त होने की सम्भावना रहती है जैसे किसी नदी के अपवाह तंत्र को उस नदी के मुहाने पर कितना अवसाद जमा होगा। इस उत्पाद की मात्रा तन्त्र में विद्यमान परिवर्तनशील घटक तत्वों की स्थिति पर निर्भर करता है। जैसे अपवाह तंत्र में जल की मात्रा, प्रवाहगति, वनस्पति आच्छादन मिट्टी की प्रकृति आदि ऐसे परिवर्तनशील घटक तत्व है। तन्त्र की दशा ऐसी सुपरिभाषित स्थिति या विशेषता की ओर इंगित करती है जो आसानी से पहचाना जा सके। इस प्रकार तंत्र किसी क्षेत्र में प्रकृति द्वारा विकसित संरचना का एक प्रारूप भी है। जो अपने आप में एक विशिष्ट विशेषता रखता है। इस विशिष्ट संरचना के आधार पर इसे पहचाना जा सकता है।

16.4.1. होम्योस्टेटिकतंत्र

होम्योस्टेटिक तंत्र उसे कहते है जिसकी क्रियाशीलता बाह्य अनिश्चित दबावों के बावजूद लगभग समान बनी रहें या किसी झटके से अपने पर्यावरण में होने वाले आकस्मिक परिवर्तन को झेलकर यथाशीघ्र अपनी स्थिति या समस्थिति प्राप्त कर ले। जैसे किसी अपवाह तंत्र में अचानक बाढ़ आ जाने पर जलप्लावन की स्थिति बन जाती है बाढ़ के हट जाने पर नदी का जल पुनः अपनी यथास्थिति या अपने बाद से पहले के बहाव क्षेत्र में आ जाता है। कुछ तन्त्रों में यह समस्थिति उनमें विद्यमान ऋणात्मक पश्पप्रभाव प्रक्रिया से प्राप्त होती है ऐसी स्थिति में पर्यावरणीय प्रभाव जितना विध्वंसक होगा उनका ऋणात्मक प्रभाव भी उतना ही अधिक होगा। यदि किसी पारिस्थितिक तंत्र में समस्त उत्पादन के लिए व्यापक स्तर पर वनों को कहा जाता है तो ऐसी स्थिति में

बाढ़ एवं मृदा अपरदन का प्रभाव बढ जाता। आस–पास की भूमि पर से 20 प्रतिशत उत्पादन का स्तर घट जाएगा, ईंधन के लिए लकड़ी की कमी हो जाएगी। पुनः वापस इस समस्या से निजात पाने के लिए वृक्षारोपण किया जाएगा। और इस प्रकार पारिस्थितिक तंत्र पुनः समस्थिति में आयेगा इस प्रकार के ऋणात्मक पश्च प्रभाव सभी प्राणी एवं मानव हेतु अति महत्वपूर्ण है। कभी–कभी प्रकृति स्वयं अपने स्तर पर भी होम्योस्टेटिक तंत्र का विकास करती है जब प्रकृति अपनी समस्थिति को वापस प्राप्त कर लेती है। जैसे अतीत में भूगर्भिक हलचल के फलस्वरूप वृहद स्तर पर वनावरण भूमिगत हो गये तथा वहां कुछ भी नहीं बचा। इसके बाद कालक्रम अनुसार वहां पुनः वनों का आवरण स्वतः ही विकसित हो गया और उसी जलवायु के अनुरूप वहां जैव विविधता देखने को मिलती है

16.4.2 अनुकूलशील या एडाप्टिव

यह तंत्र होम्योस्टेटिक की भांति ही होते हैं परन्तु उनमें एक खास विशेषता यह होती है कि इसमें किसी खास उद्देश्य की पूर्ति हेतु अनेक वैकल्पिक निवेशों में चयन की गुंजाइश होती है। इसलिए इसे लक्ष्य परक या सौद्देश्यवादी तंत्र भी कहते हैं। इनमें कुछ ऐसे परिवर्तनशील घटक–तत्व होते है जो तंत्र के आन्तरिक परिवर्तनों से प्रभावित नहीं होते है वस्न पर्यावरण अथवा किसी अन्य तलों के उत्पाद से प्रभावित होते हैं। ऐसे बाह्य पर्यावरण से प्राप्त मे निवेश– ईकाई को तन्त्र का मापदण्ड कहते है। इसमें पश्चय प्रभाव से भी मापदण्ड प्रभावित होते हैं। दो क्षेत्रों के मध्य अन्तर्क्रिया का स्तर उनके मध्यस्थ दूरी से प्रभावित होता है जैसे किसी कारखाने में श्रमिक एक निश्चित दूरी से काम करने के लिए आते है। यदि कारखाने की अवस्थिति बदल जाए और कारखाने व श्रमिको के आवास की दूरी बढ़ जाए तो भी कारखाने क्रियाशीलता पर असर नहीं पड़ेगा क्योंकि कारखाना श्रमिको की जरूरत है ऐसी स्थिति में श्रमिक काम पर पहुँच जाएंगे और बढ़ी हुई दूरी के अनुसार अपना अनुकूलन स्थापित कर लेगें।

16.4.3. गत्यात्मक तंत्र

इस तंत्र में पश्चप्रभाव तन्त्र की दशा में सतत व निशिचत दिशा में परिवर्तन करता आया है। चक्रीय आर्थिक विकास युक्त तंत्र इसका उदाहरण प्रस्तुत करते है। नियमित तन्त्र में तन्त्र की निवेश इकाईयों पर किसी संचालक का कुछ हद तक नियंत्रण रहता है। नियोजित अर्थतन्त्र इनके उदाहरण है, जिनमें राजस्व कर अथवा आयात निर्यात को नियन्त्रित करके अर्थतंत्र का आचरण इच्छित दिशा में मोड दिया जाता है। परन्तु किसी भी तंत्र पर संचालक–नियोजक का आंशिक नियंत्रण ही हो पाता है पूर्ण नहीं।

16.5. भूगोल में तन्त्र विश्लेषण

तंत्र विश्लेषण का सम्बन्ध कार्यात्मक दृष्टिकोण पर आधारित है जिसका उपयोग भूगोल में प्रायः अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करने के लिये किया जाता है। सन 1972 में पी. ई. जेम्स ने इस पर कहा है तंत्र एक समष्टि है। इसके सारे अवयव एक दूसरे से अंतर्सम्बन्धित है अतः यह समग्रता मे ही कार्यरत रहता है। पीटर टैगेट ने इस पर कहा है कि तंत्र विभिन्न वस्तुओं या अवयवों का एक ऐसा समुच्चय है जो समग्रता में एकरूप होकर कार्य करता है। भौगोलिक विश्लेषणों में स्थिति, दूरी, विस्तार, स्वरूप पारिस्थितिकी, मानव कार्यकलाप तथा जनसंख्या का विवरण एवं धनत्व सदृश्य तत्व मिलकर ही तंत्र का सृजन करते है। यहां यह उल्लेखनीय है कि भौगोलिक तंत्र से अभिप्राय ऐसे कर्मोपलक्षी तत्वों को है जिसमें स्थानिक विशिष्टताओं का समावेश हो ।

शोले के विचार में भौगोलिक तंत्र उस प्राकृतिक व जैविक वातावरण से निर्मित होते है जिनका नियंत्रणकर्ता मनुष्य है अर्थात भौगोलिक तंत्र में मनुष्यों की प्रमुखता रहती है।

अन्तर्सम्बन्ध का विश्लेषण आधुनिक भूगोल का मूल भाव है अतः तंत्र विश्लेषण की उपयोगिता भी भूगोल में अधिक है। सजग तंत्र विश्लेषण का समावेश भूगोल में भूवैन्यासिक संगठन के प्रतिरूप विश्लेषण के दौर में हुआ। डार्विन के युग में डार्विन को प्रभावित भूगोलवेत्ताओं ने भूगोल में नवीन विचारों का समावेश किया। जैसे रेटजेल का राजनीतिक भूगोल, डेविस का अपरदन चक्र जिसमें कोई भी भू–आकार युवा, प्रौढ़ व वृद्धावस्था से गुजरता है। इन सब में तंत्र की संकल्पना क्रियाशील थी। प्रादेशिक अध्ययन में प्रदेश को तन्त्र का ही समानार्थक माना गया है। इसी तरह पारिस्थितिक उपागम में प्राकृतिक जैविक तत्वों मे अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करने का आग्रह था जिसमें तंत्र संकल्पना का समावेश हो जाता था। अब पुनः पर्यावरणीय कारकवाद की दृष्टि

से भूगोल को पारिस्थितिकी तन्त्र के रूप हैं समझा जाने लगा है। टान्सले के विचारों से प्रेरित होकर भूगोल में पारिस्थितिकी तंत्र को आधारभूत महत्व प्रदान किया गया है। यह एकात्मक है जिसमें पर्यावरण, मनुष्य, पौधे एवं जन्तु जगत सभी एक ही परिधि में समाहित हो जाते है इसमें घटक तत्वों के मध्य अन्तर्क्रिया का विश्लेषण करना सम्भव हो जाता है। पारिस्थितिक तंत्र संरचनात्मक होता है, जिसमें एक व्यवस्था मिलती है जिसका तर्कसंगत अध्ययन किया जा सकता है। पारिस्थितिक तंत्र क्रियाशील भी होता है, इसमें अनवरत उर्जा एवं पदार्थ का निवेश एवं उत्पाद होता है। एक बार पारिस्थितिकी तंत्र की सीमा सुनिश्चित कर लेने पर इसके अन्तर्गतघटक तत्वों के मध्य अर्न्तसम्बध एवं अंतर्क्रिया का सांख्यिकीय विश्लेषण किया जा सकता है अन्त में पारिस्थितिकी तंत्र सामान्य तंत्र का ही एक खंड होता है। इसमें सामान्य तंत्र की विशेषताएं पाई जाती है। इस प्रकार पारिस्थितिकी तंत्र एक खुला तंत्र है जिसमें ऊर्जा गतिक नियमों के अनुसार समस्थिति की ओर अग्रसर रहता है। इन सब तथ्यों उदाहरणों से स्पष्ट है कि भूगोल में तंत्र संकल्पना के व्यावहारिक उपयोग की असीम सम्भावनायें है जिसे पारिस्थितिकी तंत्र के निम्न उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है।

पारिस्थितिकी तंत्र

पारिस्थितिकी तंत्र शब्द का सबसे पहले प्रयोग टान्सले ने 1935 ई0 में किया था जिसमें उन्होने सम्पूर्ण जीव समिश्र तथा उनके निवास्य क्षेत्र को सम्मिलित करते हुए बताया था कि पारिस्थितिकी तंत्र सभी अवयव, जैव–अजैव जीव मण्डल तथा निवास्य क्षेत्र परम्पर अंतप्रर्क्रिया द्वारा आबद्ध रहते है। तथा एक सुविकसित पारिस्थितिक तंत्र में लगभग संतुलन की स्थिति मिलती है। यह एक कार्यशील परस्पर प्रक्रियात्मक तंत्र है, जिसके अंतर्गत एक या अधिक जैव तत्व तथा उनका प्रभावकारी निवास्य समाहित है। इसके विवेचन में क्षेत्रीय सम्बधों, प्राकृतिक स्वरूपों का लेखा– जोखा इसमें निवास करने वाले प्राणी का विशिष्ट स्थान, ऊर्जा एवं पदार्थ का मूल भण्डार एवं आयात–निर्यात तथा इसकी कार्यशीलता पर ध्यान दिया जाता है। अतः स्पष्ट है कि पारिस्थितिकी तंत्र एकसूत्रबद्ध, संरचनात्मक एवं कार्यशील होता है।वातावरण तंत्र के जैव तथा अजैव घटकों में ऊर्जा का शोषण, प्रत्यावर्तन, भण्डारण तथा निष्पादन समाहित है जब तक मनुष्य कोई विध्न उपस्थित नहीं करता वातावरण तंत्र स्वनियामक होता है, पारिस्थितिकी अनुवेश–क्रमानुसार इसका विकास स्थाई संतुलन की ओर अग्रसर होता है। स्थायित्व की दशा में प्रति इकाई उपलब्ध ऊर्जा प्रवाह की दृष्टि से अधिकतम जैविक प्रेज का पोषण होता है। स्थायी संतुलन का तात्पर्य वातावरण तन्त्र में ऊर्जा के अवशोषण एवं निर्गमन में संतुलन नहीं रह जाता। जैसे किसी जीव की संख्या एक पारिस्थितिक तंत्र में इसलिए बनी रहती है कि उसे मारकर खाने वाले जीव भक्षकजीव तथा भक्ष्य जीव की संख्या में संतुलन बना रहे।

किसी मानव निर्बंधित वातावरण में संतुलन स्थापित करने में जैविक तत्वों की प्रमुख भूमिका होती है। वास्तविक जगत में वातावरण तन्त्र तीन कारकों द्वारा संचालित होता है। जो निम्न है–

1) पौधो एवं प्राणियों के माध्यम से ऊर्जा का प्रवाह तंत्र के लिए संचालन शक्ति प्रदान करना है।

2) रासायनिक तत्वों की जटिल व्यवस्था एवं पुर्नव्यवस्था के माध्यम से पदार्थों का निर्माण तथा नियमन।

3) विविध प्रकार के जैविक तत्वों या वातावरण तथा जनांकिकीय अंकुशों से समायोजन।

इस प्रकार वातावरण तंत्र एक मुक्ततंत्र है जिसमें एक मण्डल से दूसरे मण्डल में ऊर्जा का प्रवाह होता है ऊर्जा प्रवाह कई चक्रो के माध्यम से संचालित होता है। इन सभी चक्रों को सम्मिलित रूप से जैव–भू–रसायनिक चक्र कहते हैं। इनमें प्रकाशसंश्लेषण, कार्बन चक्र, नाइट्रोजन चक्र, फास्फोरस चक्र, सल्फर चक्र व जलचक्र आदि समाहित है। तंत्र विश्लेषण के अन्तर्गत भूगोल में मानव– पर्यावरण अन्तर्सम्बन्ध, मात्र एक विशेष प्रकार के कार्य–कारण सम्बन्ध का विवेचन न होकर एक अध्ययन तल हो गया है। इसी कारण अवस्थिति एवं वितरण प्रतिरूप को भौगोलिक अध्ययन का मूलधार मानने वाले वैज्ञानिकतावादी भूगोलवेता भी विश्वव्यापी पारिस्थितिक क्षेत्र को जिसका मानव अभिन्न एवं प्रमुख अंग है। भूगोल का अध्ययन तत्व मानने लगे। 1937 ई. में बेरी ने भूगोल की भावी दिशा का निर्देश करते हुए पारिस्थितिक तंत्र की प्रक्रिया के विश्व विश्लेषण को इसका उद्देश्य बताया।

इसके अन्तर्गत प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक प्रक्रियाओं के परस्पर प्रभाव की निम्न प्रक्रियाओं का निरुपण किया।

i. प्राकृतिक तथा सांस्कृतिक प्रक्रियाओं की अर्न्तप्रक्रिया का सीधा प्रभाव पारिस्थितिकी तंत्रो पर पड़ता है। यह पारिस्थितिकी तंत्र प्राणियों तथा उनके सम्पर्क में आने वाली प्रभावकारी वातावरण का समुच्चय होता है। जिसमें विभिन्न प्रकार की स्थितियां पाई जाती है।

ii. यह पारिस्थितिकी तंत्र अपनी अवस्थिति एवं स्थिति परक विशेषताओं द्वारा लोगों के अपनी जैविक तथा सांस्कृतिक आवश्यकताओं आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु कार्यतत्पकता को प्रभावित करता है साथ ही लोगों के अपने वातावरण से प्रत्यक्षीकरण का स्वरूप भी इसी से निर्धारित होता है।

iii. पर्यावरण के प्रत्यक्षीकरण तथा उनमें परिवर्तन लाने की क्षमता एवं तत्परता का प्रभाव वातावरण नियोजन तथा अवस्थितिगत नियोजन सम्बन्धी निर्णयों पर पड़ता है।

iv. पर्यावरण तथा अवस्थितिगत नियोजन की रूप–रेखा के संदर्भ में ही विभिन्न प्रकार के अन्तद्वन्द्वो का निराकरण तथा ठोस कार्य की रूपरेखा निर्धारित होती है

v. उक्त नियोजन की रूप–रेखा के अनुसार लोगों का क्षेत्रपरक आचार–व्यवहार होता हैं।

vi. क्षेत्रपरक आचार–व्यवहार से क्षेत्रपरक प्रक्रियाएं उत्पन्न होती है जो पारिस्थितिकी तंत्र की विद्यमान दशाएं बनाए रखती है तथा तंत्र को विकसित करने या तन्त्र में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने वाली हो सकती है।

vii. इसका पुनः प्रभाव प्राकृतिक व सांस्कृतिक प्रक्रियाओं पर पडता है और इस प्रकार सम्पूर्ण श्रृंखला में एक पुर्नप्रतिर्क्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

इस प्रकार पारिस्थितिकी तंत्र की परिसीमा में मानव पर्यावरण अन्तर्सम्बन्ध का स्वरूप गत्यात्मक है। इस परिप्रेक्ष्य में मानव पर्यावरण तंत्र एक विशेष प्रकार का अन्तर्सम्बन्ध नहीं अपितु एक अध्ययन तत्व बन जाता है। मानव समुदाय मण्डल, जीव मण्डल विशेष प्रकार की भाँति मानव को वातावरण संश्लिष्ट का अंग बनाता है। जिसका विकास विभिन्न प्रकार के तत्वों के परस्पर प्रभाव से होता है। मानव द्वारा प्रकृति का मानवीकरण होता गया और प्राकृतिक वातावरण सामाजिक विकास का माध्यम बनता गया। समाज पर इस प्रभाव को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है।

i. वह खण्ड जो सामाजिक गतिविधि को असम्पृक्त है और इसलिए उसका विकास प्राकृतिक, रासायनिक तथा जैविक नियमों के अनुसार हो रहा है।

ii. वह खण्ड जिसके प्रादेशिक संश्लिष्ट पर अप्रत्यक्ष सामाजिक प्रभाव पड़ा है उसका विकास ऊपर बताये नियमों के अनुसार हुआ है।

iii. वह खण्ड जिनके प्रादेशिक संश्लिष्ट पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सामाजिक प्रभाव परिलक्षित होते है इसलिए वे सामाजिक–भौगोलिक वातावरण अंग है।

iv. वह खण्ड जिनके प्रादेशिक संश्लिष्ट उत्पादन से प्रत्यक्ष तथा प्रभावित है अतः इनमें प्राकृतिक प्रक्रियायें सशक्त सामाजिक क्रियाओं के अंतर्गत कार्यशील है। इसमें विभिन्न प्रकार की सामाजिक, जैविक तथा प्राकृतिक रासायनिक नियमों की अन्तप्रक्रिया अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

ये सब बिन्दु इस बात पर सहमति बनाते है कि मानव व पर्यावरण के बीच परस्पर अन्तर्क्रियात्मक सम्बन्ध पाये जाते हैं। सभी प्राणी अपने लिए एक जैव पोषक सह अस्तित्वशील वातावरण का निर्माण करते हैं राम प्रकार पारिस्थितिक तंत्र, भूगोल में तंत्र विश्लेषण की स्पष्ट झलक पस्तुत करता है।

16.6. सारांश

तंत्र विश्लेषण विषयों के जटिल पहलूओं को समझने और उन्हें व्याख्यित करने का एक तरीका है, अध्ययन की विद्या है, जो लगभग सभी विषयों में अपनी पहुँच रखता है। भूगोल में तंत्र विश्लेषण का समावेश है। जो अन्तर्क्रियात्मक सम्बन्धों वाले पहलूओं पर अपनी छाप छोड़ता पारिस्थितिक तंत्र एक अन्तर्क्रियात्मक विषय है जिसमें मानव व पर्यावरण को अलग–अलग पहलुओं के माध्यम से समझा जा सकता है। मानव समाज

एक ऐसे वातावरण का निर्माण करता है जिसमें न सिर्फ उत्पादन प्रक्रिया अपितु जैविक इकाई के रूप में जीवीकोपार्जन के कार्यों की भूमिका रहती है। इस अर्थ में भूगोल में समाज मात्र एक सामाजिक तत्व ही नही बल्कि जैव सामाजिक तत्व होता है इसलिए भूगोल के सभी तत्वों के अतिरिक्त मानव समुदाय पृथ्वी के भू रासायनिक संतुलन में एक निश्चित आयतन का जैवपुंज तथा पृथ्वीतल के जैव व अजैव पदार्थों का जो जल एवं वायुमण्डल मे भी प्राप्त होता है, विशाल मात्रा में उपयोग करने वाला भी है। इनके अतिरिक्त वह प्रकृति में कार्बन तथा अपने अन्य अवशिष्ट पदार्थों की आपूर्ति करने वाला जीव भी है। इस प्रकार मानव समुदाय का जैविक तत्व भी सामाजिक विकास को पर्याप्त प्रभावित करता है। मनुष्य की भोजन, उष्मा, सन्ततिवृद्धि, जीवन पोषण तथा जीवन यापन के लिए जो आवश्यकताएं वो कई प्रकार की मूलभूत सामाजिक प्रक्रियाओं को जन्म देती है। इन्हीं के कारण वह श्रम करने को प्रवृत होता है तथा समुदाय में संगठित होता है। भूगोल उस विद्यमान भौतिक तन्त्र का अध्ययन करता है जो पृथ्वी के भौगोलिक मण्डल का निर्माण करता है। यह भौगोलिक, मण्डल मानव समाज के वास्तविक अथवा सम्भाव्य विकास का पर्यावरण प्रस्तुत करता है।

16.7. पारिभाषिक शब्दावली

- **तन्त्र** – तंत्र विशिष्ट गुण धर्मों युक्त वस्तुओं एवं तत्वों का एक गुच्छ है जो परस्पर विभिन्न प्रकार से अन्तर्सम्बन्धित होते है।
- **होम्योस्टेटिक तंत्र**–जिसकी क्रियाशीलता बाह्य अनिश्चित दबावों के बावजूद लगभग समान बनी रहे होम्योस्टेटिक तंत्र कहलाता है।
- **एडाप्टिव अनुकूलन तंत्र**– इसमें किसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु अनेक वैकल्पिक निवेशों में से चयन की गुंजाइश होती है।
- **भूगोल में तंत्र विश्लेषण** –तंत्र विश्लेषण कार्यात्मक दृष्टिकोण से जुड़ा है, जिसका उपयोग भूगोल में प्रायः अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करने में किया जाता है।
- **पारिस्थितिक तंत्र**– पारिस्थितिक तंत्र शब्द का सबसे पहले प्रयोग ए.जी टान्सले ने सन 1995 में किया जिसमें उन्होने सम्पूर्ण जीव समिश्र तथा उनके निवास्य क्षेत्र को सम्मिलित करते हुए बताया था कि पारिस्थितिकी तंत्र के सभी अवयव, जैव–अजैव, जीवमण्डल तथा निवान्य क्षेत्र परस्पर अन्तप्रर्क्रिया द्वारा आबद्ध रहते है।

16.8 बोध प्रश्न

16.8.1 दीर्घ उत्तीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न– 1. तंत्र की संकल्पना क्या है उदाहरण सहित समझाइए।

प्रश्न–2. तंत्र कितने प्रकार का होता है। इसके प्रकारों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 3 भूगोल में तन्त्र विश्लेषण की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 4. पारिस्थितिकी तंत्र क्या उदाहरण सहित समझाइए ।

16.8.2. लघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न–1 क्षेत्र को परिभाषित कीजिए।

प्रश्न–2 गत्यात्मक तंत्र क्या है?

प्रश्न–3 होम्योस्टेटिक तंत्र क्या है?

प्रश्न–4 एडाप्टिव तंत्र क्या है?

प्रश्न–5 पारिस्थितिक तंत्र को परिभाषित कीजिए ।

16.8.3. बहुविकल्पीय प्रश्नोतर

प्रश्न 1. पारिस्थितिकी क्षेत्र शब्द का सबसे पहले प्रयोग किसने किया था।

(क) टान्सले (ख) डेविस

(ग) डार्विन (घ) रेटजेल

प्रश्न 2. सामान्यतया तंत्र को कितने प्रकार का बताया गया है?

(क) 3 (ख) 2

(ग) 4 (घ) 5

प्रश्न 3. तत्र विश्लेषण किस दृष्टिकोण से जुड़ा हुआ है।

(क) कार्यात्मक दृष्टिकोण (ख) मात्रात्मक दृष्टिकोण

(ग) व्यवहारवादी दृष्टिकोण (घ) सामाजिक दृष्टिकोण

उतरमाला– 1.(क), 2. (ख), 3 (क)

16.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन का क्रम विकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर
- प्रो. जगदीश सिंह, भौगोलिक चिंतन के मूलाधार, ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, मालिक बुक कम्पनी जयपुर
- डॉ. वी.सी. जाट, परिचयात्मक भूगोल, मालिक बुक कम्पनी, जयपुर
- Dickinson, R.E. Makers of Modern Geography, London.
- Hartshorne, R- The Nature of Geography AAAG.
- Harvey D. Explanation in Geography. Ed. Antold London.
- Mastin G.F. All possible world. Oxford London.
- Arild Holt –Jenson, Geography History & concepts Sage Pubs.